भरत अंक

'ब्रह्मलोक' मासिक पत्र का विशेषांक

सम्पादक
चन्द्रमणि
रामेन्द्र

प्रकाशक
'ब्रह्मलोक' कार्यालय
बेहरामऊ, रायबरेली
(उ० प्र०)

ब्रह्मलोक

भरतं निर्मलं शान्तं रामसेवापरायणम् ।
धनुर्बाणधरं वीरं कैकेयीतनयं भजे ।।

वर्ष २ | बछरावाँ, रायबरेली (उ० प्र०), भाद्रपद, आश्विन श्रीकृष्ण-सम्वत् ५१९८ अगस्त-सितम्बर १९७१ | पूर्ण संख्या २४

भरत

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, पी-एच० डी०
(राजनांद गांव, म० प्र०)

जो कुछ मनुष्य का,
मनुष्य का कहाँ है वह ?
आँखें मुंदती हैं, तो—
रहस्य खुल जाता है ।
न्यास जो मिला है
उसकी समृद्धि के लिए,
नर—
निज आयु के बरस कुछ पाता है ।
शान्ति तज,
क्रान्ति का बटोही—
बना विश्व जब,
तामसी तमिस्रा में
बिकल बिललाता है ।
तब भावना में
भारतीयता के भव्य भाव—
भरकर—
भारत भरत-गुन गाता है ।
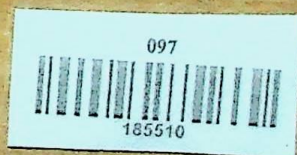
क्षमा याचना :-

'ब्रह्मलोक' मासिक पत्र का विशेषांक श्री भरत अङ्क आपके हाथ में है। सामग्री और लेखों के चयन की दृष्टि से अंक कितना उपादेय बन पाया है, इसका निर्णय तो पत्र के पाठक ही कर सकेंगे। संपादन की कठिनाइयों से जो भी त्रुटि रह गई है उसके लिये हम अपने विज्ञ पाठकों से क्षमा याचना करते हैं। पत्र के कलेवर के अनुरूप तथा अधिक लेखों के आ जाने से लेखों में पर्याप्त काँट-छाँट की गई है। कुछ लेखों में भाव साम्य के कारण भी काँट-छाँट हुई है। इससे लेखकों को क्षोभ होना आवश्यक है। कितने ही सम्माननीय लेखकों के लेख स्थानाभाव के कारण अमुद्रित ही रह गये हैं। जिन्हें अगले वर्ष के अंकों में दिये जाने का प्रयास किया जायगा। प्रेस के स्थानान्तरण के विलम्ब के कारण पत्र का सयुक्ताङ्क निकाला गया है। प्रस्तुत अङ्क में ग्यारहवाँ, बारहवाँ अङ्क भी शामिल है। प्रूफ के लिये भी विशेष संशोधन हम नहीं कर पाये हैं। उक्त समस्त त्रुटियों के लिये हम आपसे क्षमा चाहते हैं। आशा है हमारे दृष्टिकोण की पवित्रता को ध्यान में रखते हुये विज्ञ पाठक गण क्षमा करेंगे।

'ब्रह्मलोक'' पत्र आपका अपना पत्र है। यह किसी प्रकार के लाभ का दृष्टिकोण लेकर नहीं निकाला गया है। धर्म प्रचार ही इसका मुख्य उद्देश्य है। यही कारण है कि विगत दो वर्षों से पत्र को पर्याप्त घाटा सहना पड़ा है। इसकी परम्परा को अछुण्ण रखने के लिये पाठकों, ग्राहकों तथा सहायकों के सामने हमारे निम्न सुझाव हैं।

१– एक-एक ग्राहक या पाठक पाँच नये ग्राहक बनाने के लिये प्रमाद रहित होकर कृत संकल्प हो जायें। बीस ग्राहक बनाने पर हम एक ग्राहक के लिये वर्ष भर पत्र निःशुल्क भेजेंगे।

२– व्यापारी अपना सुष्ट विज्ञापन देकर पत्र का तथा अपना भी लाभ उठा सकते हैं। गन्दे तथा अश्लील विज्ञापन को छोड़कर सभी लिये जा सकते हैं।

३– आजीवन ग्राहक बनकर पत्र के संचालन में आप मदद कर सकते हैं।

४– धर्मवीर तथा साहित्य प्रेमी अपनी उदारता के द्वारा पत्र को दान देकर उसे स्थायित्व प्रदान कर सकते हैं। हम उनके चित्र तथा नाम भी पत्र में गौरव के साथ अङ्कित करेंगे।

आशा है आप प्रार्थना पर ध्यान देकर त्रुटियों के लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

भवदीय

सम्पादक
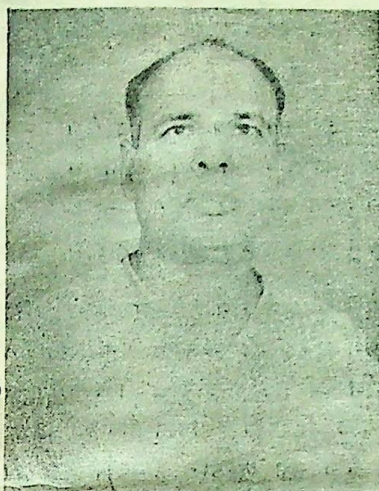
श्री भरत तत्व

मानसरत्न पं० ओंकारनाथ द्विवेदी
"कुशल", बी० ए०

श्री राम-रसावतार भक्त-शिरोमणि, त्यागमूर्ति रामानुज श्री भरत के दिव्यतम-त्याग अनुराग का वर्णन अप्रमेय है। यह कहना युक्तिसंगत ही है कि वही पूर्ण परात्पर ब्रह्म श्री राम के रूप में उपास्य (इष्टदेव) हैं और वही व्यापक ब्रह्म संसार में "रसो वै सः" परमात्मा के स्वरूप को सिद्ध करने के लिए प्रेम-मूर्ति श्री भरत हैं। अर्थात दोनों एक ही हैं। कार्य पद्धति की विभिन्नता से पृथक-पृथक रूपों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कविकुल-कान्त श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसीलिए श्री मानस में ग्राम महिलाओं के द्वारा यह संकेत भी दिलाया है :—

भरत राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ।।
वय वपु बरन रूप सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ।।

एक अन्यत्र स्थान पर श्री भरत को कवि ने श्री राम जी की परछाईं माना है। प्रतिबिम्ब तो बिम्ब के अनुकूल ही होता है। आइए श्री भरत तत्व की विशेषता का अवलोकन करें। "अखिल विश्व यह मोर उपाया" के सिद्धान्त के अनुसार उनकी सत्ता अपने चार प्रमुख भागों में विभक्त हुई, जिन्हें हम सभी चार पुरुषार्थ के रूप में जानते हैं। यद्यपि यह चारों पुरुषार्थ अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं पर तत्वतः वे एक ही हैं। मोक्ष-काम-धर्म-अर्थ चारों तत्वों का सामञ्जस्य है। अर्थ और कर्म क्रमशः धर्म और मोक्ष की ओर अग्रसर हों यही हमारे सुन्दर जीवन यापन की शैली है। अर्थ और काम स्वतन्त्र न हों इसलिए अर्थ पर धर्म का शासन और काम पर मोक्ष का शासन रक्खा गया है।

श्री रामचरित मानस की भूमिका के अनुसार परम वेदज्ञ परमेष्ठिन ब्रह्मपुत्र श्री वशिष्ठ ने नामकरण के अवसर पर इस तथ्य का उद्घाटन किया :—

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी । वेद तत्व नृप तब सुत चारी ।
मुनि धन जन सरबस शिव प्राना । बाल केलि रस तेहि सुख माना ॥
बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥
भरत शत्रुहन दूनहुं भाई । प्रभु सेवक जस प्रीति बढ़ाई ॥

काम तत्व श्री लखन के ऊपर मोक्ष भगवान राम का अनुशासन है और श्री शत्रुघ्न जो अर्थ तत्व हैं उनके ऊपर धर्म स्वरूप श्री भरत का अनुशासन है । अर्थात यह सिद्ध हुआ कि समस्त कामनाओं का केन्द्र मोक्ष होना चाहिए । जिन कामनाओं से संसार की ओर गति हो, वही कामनायें पाप की प्रवृत्ति रूपा हैं । इसी प्रकार अर्थ की समस्त गति धर्म की ओर होनी चाहिए जो अर्थ धर्म की ओर नहीं है उसे ही अधर्म की संज्ञा दी गयी है । श्री भरत साक्षात् धर्म हैं । जिस प्रकार "रामो विग्रहवान धर्मः" से राम भगवान को सम्बोधित किया गया है । उसी प्रकार श्री भरत लाल भी हैं । धर्म से ही समस्त समाज का परिपालन होता है और श्री भरत लाल के द्वारा तो धर्म की जो मर्यादायें प्रस्थापित कर दी गयीं उनसे अनन्त काल तक लोग प्रेरणा लेते रहेंगे । श्री गोस्वामी जी ने स्पष्ट लिखा है । धर्म के द्वारा ही संसार पुष्पित-पल्लवित होता है । यथा :—

जो न होत जग जनम भरत को । सकल धरणि धुरि धरम धरत को ॥
विश्व भरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥

इसीलिए श्री भरत की प्रीति का सम्बन्ध श्री शत्रुघ्न से है । धर्म के अन्दर ही रहना अर्थ की शोभा है । यदि अर्थ धर्म के ऊपर आ जाय तो संसार निश्चय ही भयङ्कर विनाश के गर्त में जा गिरता है । धर्म विहीन समाज पशुओं का समाज है । भौतिक वस्तुओं के संग्रह में यदि धर्म की मर्यादा नहीं है तो मनुष्य गलत साधनों के द्वारा धन की प्राप्ति करता हुआ समाज में भयङ्कर विस्फोट उत्पन्न कर देता है । यही कारण है कि भारतीय परम्परा में कभी भी अर्थ का महत्व नहीं रहा । वैभव सम्पन्न लोग भी अन्त समय में धर्म का सम्पादन ही करना अपना मूल उद्देश्य मानते थे । इसके अनेकानेक उदाहरण हमारे धर्म शास्त्रों में भरे पड़े हैं । "चौथे पनहिं जाय नृप कानन ।" तो

☞ शेषांश पृष्ठ ६७ पर

श्री भरत-कवचम्

॥ वन्दना ॥

कैकेयीतनयं सदा रघुवरन्यस्तेक्षणं श्यामलं
सप्तद्वीपपतेर्विदेहतनयाकान्तस्य वाक्ये रतम् ।
श्रीसीताधवसव्यपार्श्वनिकटे स्थित्वा वरं चामरं
धृत्वा दक्षिणसत्करेण भरतं तं बीजयन्तं भजे ॥

॥ विनियोगः ॥

ॐ अस्य श्री भरतकवचमंत्रस्य अगस्त्यऋषिः, श्री भरतो देवता अनुष्टुप् छन्दः शंख इति बीजम् कैकेयीनन्दन इति शक्तिः भरतखंडेश्वर इति कीलकम्, रामानुज इत्यस्त्रम्, सप्तद्वीपेश्वरदास इति कवचम् रामांशज इति मंत्र : श्री भरत प्रीत्यर्थं सकलमनोरथसिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।

॥ न्यासः ॥

अथ करन्यासः— ॐ भरताय अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ शंखाय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ कैकेयीनंदनाय मध्यमाभ्यां नमः, ॐ भरतखंडेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ सप्तद्वीपेश्वरदासाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अथांगन्यासः— ॐ भरताय हृदयाय नमः, ॐ शंखाय शिरसे स्वाहा, ॐ कैकेयीनंदनाय शिखायै वषट्, ॐ भरतखंडेश्वराय कवचाय हुं, ॐ रामानुजाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सप्तद्वीपेश्वरदासाय अस्त्राय फट् ॐ रामांशजाय चेति दिग्बन्धः ।

॥ ध्यानम् ॥

रामचन्द्र सव्य पार्श्वे स्थितं कैकयजा सुतम् ।
श्रीरामं चामरेणैव बीजयन्तं मनोहरम् ॥

रत्नकुंडलकेयूरकंकणादि सुभूषितम् ।
पीताम्बरपरीधानं वनमालाविराजितम् ॥

मांडवीधौतचरणं रसना नूपुरान्वितम ।
नीलोत्पलदलश्यामं द्विजराज समाननम् ॥

आजानुबाहुं भरत-खण्डस्य प्रतिपालकम् ।
रामानुजं स्मितास्यं च शत्रुघ्नपरिवन्दितम् ।।
रामन्यस्तेक्षणं सौम्यं विद्युत्पुंजसमप्रभम् ।
रामभक्तं महावीरं वन्दे तं भरतं शुभम् ।।
एवं ध्यात्वा तु भरतं रामपादेक्षणं हृदि ।
कवचं पठनीयं हि भरतस्येदमुत्तमम् ।।

।। स्तोत्रम् ।।

पूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकयीसुतः ।
नृपात्मजः प्रतीच्यां हि पातूदीच्यां रघूत्तमः ।।
अधः पातु श्यामलाँगश्चोर्ध्वं दशरथात्मजः ।
मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः ।।
शिरस्तक्षपिता पातु भाल पातु हरिप्रियः ।
भ्रुवोर्मध्ये जनकजा वाक्यैकतत्परेऽवतु ।।
पातु जनकजामाता मम नेत्रं सदात्र हि ।
कपोलौ माण्डवीकान्तः कर्णमूले स्मिताननः ।।
नासाग्रं मे सदा पातु कैकेयी तोषवर्द्धनः ।
उदराङ्गो मुखं पातु पातु वाणीं जटाधरः ।।
पातु पुष्करतातो मे जिह्वा दन्तान्प्रभामयः ।
चिबुक वल्कलधरः कण्ठं पातु वराननः ।।
स्कधं पातु जितारातिर्भुजौ शत्रुघ्नवंदितः ।
करौ कवचधारी च नरवान् खड्गधरोऽवतु ।।
कुक्षी रामानुज पातु वक्षः श्रीरामवल्लभः ।
पार्श्वे राघवपार्श्वस्थः पातु पृष्ठं शुभाषणः ।।
जठरं च धनुर्धारी नाभिं शरकरोऽवतु ।
कटिं पद्मेक्षणः पातु गुह्यं रामैकमानसः ।।
राममित्रः पातु लिंगमूरू श्रीरामसेवकः ।
नन्दिग्रामे स्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ।।
श्रीराम पादुकाधारी पातु जंघे सदा मम ।
गुल्फौ श्रीरामबन्धुश्च पादौ पातु सुरार्चितः ।।

श्री भरत-कवचम्

रामाज्ञापालकः पातु समाङ्गान्यत्र सर्वदा ।
मम पादांगुलीः पातु रघुवंशविभूषणः ।।

रोमाणि पातु नो रम्यः पातु रात्रौ सुधीर्मम ।
तूणीरधारी दिवसे दिक्षु मां पातु सर्वदा ।।

सर्वकालेषु मां पातु पांचजन्यः सदा भुवि ।
एवं श्री भरतस्येदं सुतीक्ष्णकवचं शुभम् ।।

मया प्रोक्तं तवाग्रे हि महामंगलकारकम् ।
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं सुपुण्यदम् ।।

पठनीयं सदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् ।
पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ।।

यथा याति परं तोषं तथा स्व कवचेन च ।
तस्मादेतत्सदा जप्यं कवचानामनुत्तमम् ।।

अत्रास्य पठनान्मर्त्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
विद्याकामो लभेद्विद्या पुत्रकामो लभेत् सुतम् ।।

पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
यद्यन्मनोऽभिलषितं तत्तत्कवचपाठतः ।।

लभ्यते मानवैरत्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ।।

(अध्यात्मरामायण मनोहर काण्ड अ० ११)

भक्त-शिरोमणि भरत

[कविरत्न 'चन्द्रमणि' पाण्डेय]

[१]

विश्व के भरण और पोषण प्रवीण,
परमार्थ के पथिक अति विमल विचार है।
'चन्द्रमणि' रामचन्द्र-चन्द्र के चकोर चारु,
चरण - कमल - चंचरीक चमत्कार है।
तरुण दशा में तनु तप-ताप-तप्त किया,
त्यागि राज्य सुख प्रेम सिन्धु पारावार है।
श्याम-घन-मोर को, सुजन चितचोर को,
श्री कैकेयी किशोर को प्रणाम बार-बार है।

[२]

जिनका चरित्र - चित्र भक्तों में रहा चमक,
मादक सनेह की सुरा का थे भरतलाल।
भूमिलोक सुरलोक अगम पहाड़ियों में,
मुक्ति पंथ एकमात्र नाका थे भरतलाल।
'चन्द्रमणि' रामचन्द्र चन्द्र थे प्रकाशमान,
शुचि शान्त शुभ्र निशा राका थे भरतलाल।
लहर लहर लहराती जो दिगंतरों में,
राघव की सुयश – पताका थे भरतलाल।

[३]

जिसने अवध को उजाड़ा निज स्वार्थ हेतु,
ऐसी ही कठोर माँ के जाये थे भरतलाल।
जनक वशिष्ठ जैसे ज्ञानी सुलझा सके न,
जटिल पहेली बन आये थे भरतलाल।

'चन्द्रमणि' पावन चरित्र से तपोबल से,
मुग्ध जनता के मन भाये थे भरतलाल।
विश्व जिन राघव का ध्यान करता था,
उन राघव के ध्यान में समाये थे भरतलाल।

[४]

शासन की, सेवा की, सहिष्णुता की, साधना की,
त्याग की विचित्र परिभाषा थे भरतलाल।
'चन्द्रमणि' चातक सी लगन लगाये हुए,
प्रभु-पद प्रेम की पिपासा थे भरतलाल।
चौदह बरस की निराशा - निशा - मध्य,
रामराज्य की अमल अभिलाषा थे भरतलाल।
भरत की आशा अहोरात्र राघवेन्द्र रहे,
राघव की एकमात्र आशा थे भरतलाल।

[५]

साधना यही थी जिसके फलस्वरूप सभी—
विकृत समाज - साज औरे और हो गये।
विश्व ने विलोका रामराज्य का विशाल दृश्य,
प्राणी वृन्द शान्त सुखी एकतौर हो गये।
प्रभु के प्रताप रवि-रश्मि से प्रफुल्ल-
भाव भक्ति के सरोजों में भरत भौंर हो गये।
'चन्द्रमणि' चौदह भुवन थे चकित,
रामबन्धु बन्धुता में संत - सिरमौर हो गये।

भरत-वन्दना

स्वामी गिरि मोहन 'गुरु'

चल न पाई सामने जिसके अनृत की।
गा रहे रघुनाथ भी कीरत-चरित की॥
राम के प्रतिबिम्ब साधु सुठि मना की।
वन्दना शत वन्दना भारत – भरत की॥

भरत-चरित्र का रहस्य : एक संकेत

[डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय]

लेखक

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र और व्यक्तित्व महिमामय है पर रामत्व के प्रति सकल धर्मधुर-धारिणी निष्ठा के साक्षात् अवतार भरत का आचरण इतना भव्य और उनकी गरिमा की थाह पाने में कविबुद्धि अपने को असमर्थ पाती है—

चित्रकूट-प्रसंग में भरत भक्ति की जीवन्त प्रतिमूर्ति गोस्वामी-तुलसीदास को बरबस घोषित करना पड़ा—

"भरत महामहिमा जल रासी।
मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ।।"

जिनकी महामहिमा-सिन्धु के तीर, भगवान राम को भी ज्ञानदृष्टि देने के अधिकारी वशिष्ठ की 'मति' 'अबला' सी खड़ी हो उनकी गूढ़ अन्तरात्मा का अनुसंधान सिवाय उनके परमाराध्य राघवेन्द्र के कौन कर सकता है। बिम्ब की अपेक्षा प्रतिबिम्ब अधिक रहस्यमय होता है, राम बिम्ब हैं तो भरत उनके प्रतिबिम्ब स्वरूप हैं।

'भरतहि जानु राम परछाहीं।'

स्वरूपतः भरत राम के ही प्रतिरूप हैं और जहां तक लोक-धर्म की व्यावहारिक मर्यादाओं को आत्मसात् करने का प्रश्न है, भरत की गहराई और व्यापकता असीम है—

इस दृष्टि से तो 'दुहु विधि' ही नहीं —

'सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।'

भगवान राम सामान्य धर्म के आदर्श हैं तो भरत विशेषतर लोक-धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं—

इसी वैशिष्ट्य को ध्यान में रखते हुए उनके नामकरण के प्रसंग में ऋषि वशिष्ठ ने कहा है—

"विश्व भरण पोषण कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥"

भगवान राम सुखधाम हैं तो भरत 'विश्व भरण' और 'विश्व-पोषण' का असामान्य दायित्व संभालते हैं। यह 'विश्वभरत्व' और बिश्वपोषकत्व' भरत के चरित्र की मौलिक महत्ता की आधारशिला है।

राम-कथा के भीतर भरत को जो अभिनय करना पड़ा है वह लोक-पोषक होते हुये भी लोक-विलक्षण है, वह स्वयं अपने आप में नाटकीय मनःस्थितियों का विराट महाकाश के रूप में अवतरित हुआ है। भरत को राग और विराग, ग्रहण और त्याग, व्यष्टि और समष्टि, संस्कार और कर्तव्य के उग्र एवं कोलाहल के बीच एक व्यावहारिक लोकधर्म की प्रतिष्ठा करनी पड़ी है। एक ओर वे 'भायप भगति' की मर्यादा संभालते हैं, दूसरी ओर राजनीति के सहज सात्विक गौरव की अखण्डता भी सुरक्षित रखते हैं। वे अपनी दारुन दीनता, अदम्य व्याकुलता और रामदर्शन की तीव्र लालसा से प्रेरित होकर पिता द्वारा प्रदत्त राज्याधिकारों को जिस गहरी विरक्ति के साथ त्याग कर सारी प्रजा समेत चित्रकूट को चल पड़ते हैं यह विश्व के इतिहास में एक अद्भुत घटना है साथ ही साथ एक भावुक और संवेदनशील भक्त की करुण मार्मिक कथा भी। सुलभ राज्याधिकार के प्रति विराग उनमें कर्तव्य के प्रति उपेक्षा नहीं जगा पाता क्योंकि उन्हें इस मर्यादित दायित्व का बोध बराबर बना रहता है कि—

"संपति सब रघुपति कै आही।
जौ बिनु जतन चलौं तजि ताही।
तौ परिनाम न मोर भलाई॥"

ऐसा सोचकर कभी अपने सेवा धर्म से विचलित न होने वाले परम प्रौढ़ शुचि सेवकों को सारी व्यवस्था का भार सौंपकर तब चित्रकूट के लिये प्रस्थान करते हैं। राम के प्रति उनकी अनन्यता लक्ष्मण जैसी अल्हड़ तथा लोकधर्म निरपेक्ष नहीं है, उसका अपना अलग वैशिष्ट्य है। भरत तो लोक-धर्म सापेक्ष व्यष्टिधर्म के आदर्श हैं। एक ओर वे परमाराध्य भगवान राम के प्रति इतने अनन्याश्रित हैं कि बशिष्ठ और कौशल्या तक उनकी अधीरता

की थाह नहीं ले पाते और दूसरी ओर इतने लोकवत्सल हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम को 'संकोच' में नहीं डालना चाहते और अपनी व्यक्तिगत लालसा की सर्वथा उपेक्षा करके सभी उनकी आज्ञा से १४ वर्ष तक भगवान के खड़ाऊं को सिंहासन पर बैठाकर सारे राजकाज का संचालन करते हैं। राज-वैभव के बीच अखंड तप का जीवन व्यतीत कर वे सच्चे अर्थों में गृहस्थ भक्त और राजर्षि योगी का जीवन्त आदर्श प्रस्तुत करते है—

"तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥"

'चंपक बाग' में चंचरीक की भांति राग रहित होकर अवध में निवास करने वाले भरत के भीतर अनाशक्ति योग तथा अध्यात्मनिष्ठ लोकधर्म का भव्य समन्वय चरितार्थ हुआ है। एक बात भरत के चरित्र और स्वभाव में बड़ी गूढ़ और रहस्यमय है कि वे अपनी प्रतारणा को तो किसी भी सीमा तक सहन कर लेते हैं पर अपने आराध्य के प्रति संबंध भावना में तनिक भी अवरोध उन्हें असह्य है। इसके लिये साक्षात जननी कैकेयी को भी जिन्हें भगवान राम अपनी माता से भी अधिक मानते रहे, भरत जीवन भर क्षमा नहीं कर पाये। जो सारे विश्व के भरण-पोषण का दायित्व संभालने की क्षमता रखता है, जो सारे धर्मों की धुरी धारण किये हुए है उसका हृदय अपनी माता के प्रति इतना अनुदार क्यों ? यह लोकधर्म की दृष्टि से भरत के चरित्र के संबंध में एक विराट प्रश्नवाचक चिह्न है ? इसका समाधान यही है कि भरत आत्मनिष्ठ और भक्तिनिष्ठ लोकधर्म के प्रतिष्ठापक हैं। जहां उच्चतर सम्बन्ध भावना तथा चरम जीवन-लक्ष्य के आगे सांसारिक सम्बन्ध नगण्य सिद्ध हो जाते हैं। गहराई से विचार करें तो भरत का कैकेयी के प्रति अदम्य क्षोभ एक रामभक्त का निजी व्यक्तिगत क्षोभ मात्र न होकर 'प्राण के प्राण', 'जीव के जीव' और 'सुख के सुख' भगवान राम के प्रति निष्ठावान समस्त लोक के क्षोभ का प्रतिनिधित्व करता है। यदि अयोध्या की सारी प्रजा, सारी प्रकृति कैकेयी के आचरण से पीड़ित न हुई होती तो भगवान राम तो 'सहज आनन्द' के निधान और भरत सहज सहिष्णुता के अवतार हैं। 'विश्व भरण पोषण' के संरक्षक भरत के भीतर यह 'विश्वपीड़ा' घनीभूत हो उठी ओर भगवत प्रेम की अनन्य निष्ठा की संपुष्टिकारक होने के नाते उसकी प्रतिक्रिया स्थाई हो गयी। गीतावली में गोस्वामी जी की इस मनःस्थिति का

चित्र खींचते हुए भरत की सारी मानस-ग्रन्थियों को खोलकर रख देते हैं :—

"कैकेयी जौं लौं जियति रही।
तौ लौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही।
मानी राम अधिक जननी तें जननिहुं गँस न गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही।
लोक-वेद मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही।।"

गीतावली ७|३७

भरत की विवेकशीलता 'राम स्नेह' पर 'सही' लगाती चली है। ऐसा कोई भी सांसारिक सम्बन्ध त्याज्य है जो राम प्रेम में सहायक न हो—

"जरउ सो संपति सकल सुख सुहृद मातु पित भाय।
सन्मुख होत जो रामपद करै न सहज सहाय।।"

इसी विशिष्ट भाव भूमि पर 'तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बन्धु भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितनि' और इस बाहर से लोकमर्यादा विमुख प्रतीत होने वाला आचरण लोक के लिये 'मुद्र मंगलकारी' ही सिद्ध हुआ। इसी प्रकार भरत की अपनी माता के प्रति विक्षोभ की स्थिति भक्त की अन्तरात्मा की लोकमंगलमयी पुकार है जिसके पीछे एक विराट उच्चतर लोकधर्म का संपोषण स्वर गूँज रहा है। भरत के समक्ष तो—

'जोग कुजोग ग्यान अग्यानू।
जहँ नहि राम प्रेम परिधानू।।"

उनके लिये तो राम प्रेम ही साधन और वही परम सिद्धि है :-

"साधन सिद्धि राम पद नेहू।
मोहि लखि परत भरत मत एहू।।"

एक-एक परमाणु में राम प्रेम का सिन्धु भरे हुये हैं:—

"नाम जीह जपु लोचन नीरू।
पुलकि गात हिय सिय रघुबीरू।।"

भरत की सहज सलोनी मुद्रा है जिसके आगे 'हिमगिरि कोटि अचल रघुबीर' का धैर्य भी विचलित हो उठा। चित्रकूट में उनकी मनःस्थिति द्रष्टव्य है:-

'उठे राम अति प्रेम अधीरा।
कहुँ धनु कहुँ निषंग कहुँ तीरा।।"

भरत और राम का यह मिलन लोक को विभोर कर देने वाला प्रेम और परमार्थ का आध्यात्मिक मिलन है।

चित्रकूट के पथ पर भरत की सारी यात्रा आराध्य के विहारस्थल की ओर भक्त साधक परमार्थ-पथिक की नित्य आरोहण यात्रा का शाश्वत प्रतीक हो गयी है। भरत का यह चिन्मय चरित्र सहृदय भक्तजनों का सर्वस्व है जिसने—
कीन्हेहु सुलभ सुधा वसुधाहू।
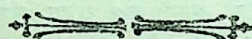
भक्त भरत

पं० सूर्य बली मिश्र 'द्विजराज'
बाला पो० हरचन्द पुर, रायबरेली

रविकुल केतु बन्धु भरत सराहनीय,
होकर निरीह नित्य रामगुण गाते थे।
पावन सुठावं नंदिग्राम सा सुध्यान-धाम,
शांत रस लीन कर्म योग फल पाते थे।
दीनता स्वभाव 'द्विजराज' नहीं त्याग सके,
माता कुटिलाई देखि देखि बिलखाते थे।
मान - अपमान में समान समशील सदा,
राम नाम गाते अश्रुविन्दु बरसाते थे।
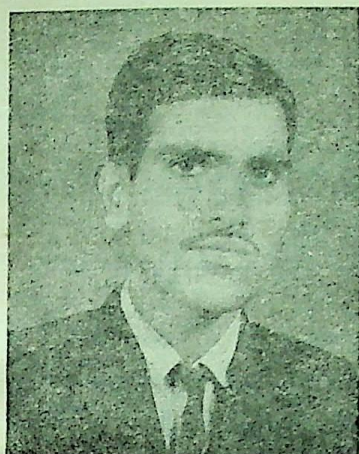
भरत-माण्डवी

श्री अमरनाथ वाजपेयी
यहियागंज, लखनऊ-३

भरत— (माण्डवी से)

देवि ! आज रघुकुल पर कैसे वज्रघात है।
भ्रात्र वन गये और सिधारे स्वर्ग तात हैं।
मातु कैकई की करनी कैसी अनरीत।
शुभ मुहूर्त में काम किया कैसा विपरीत॥

माण्डवी— (भरत से)

शान्त ! आर्य हों शान्त चल रहा नियति चक्र है।
दुर्दिन आये लगी शनी की दृष्टि वक्र है॥
माता हैं निर्दोष काल की गति है न्यारी।
सुख दुख आते चक्र धुरी सम बारी बारी॥

भरत— (माण्डवी से)

देवि ! तुम्हारा उद्बोधन, मैं समझ न पाता।
आज मेरा मन है अशान्त कुछ नहीं सुहाता॥
अवध राज्य ही नहीं अगर त्रिभुवन मिल जाए।
तो भी मुझको राम चरण से पृथक न पाए॥

माण्डवी— (भरत से)

नाथ हुआ जो हुआ विगत अब नहीं मिलेगा।
मुरझाए पौधे पर कैसे सुमन खिलेगा॥
अस्तु, उठो अब करो प्रजा देवों का काजा।
दास भाव से रहो राम को समझो राजा॥

भरत— (माण्डवी से)

ठीक कह रही शुभे ! मुझे जंचती है शिक्षा,
होंगे वही सुकार्य तुम्हारी जैसी इच्छा ।
पर तुम बिन मैं लक्ष्य न पूरा कर पाऊंगा ।
मैं हूं सन्त न काम राज्य का कर पाऊंगा ।।

माण्डवी— (भरत से)

आर्यपुत्र ! मत हों अधीर मैं साथ रहूंगी ।
जाड़ा, आतप, वर्षा मिलकर साथ सहूंगी ।।
चिन्ता छोड़ो, उठो कार्य की करो तयारी ।
नर का देती रही साथ युग-युग से नारी ।।

भरतादर्श

श्री अनिल कुमार सिंह
लखनऊ

भाई के उजले नाते को दिया नया अवमान !
'भरत – जी' तुम थे 'भरत – समान' ।
तीन – चार का भेद नहीं तुमने समझा ।
सभी एक थे अपना और पराया क्या ?
'रामराज्य' की प्रबल – नींव के प्राण तुम ।
'कैकेयी के भाव' वेधते वाण तुम ।
'गद्दी' को ठुकराया तोड़ा नहीं विधान ।
भरत जी तुम थे भरत – समान ।
'तुलसी' की लेखनी यही है मानती ।
'धर्म–धुरी' धरती पर रख दी वीर—व्रती ।
वह पावन – स्नेह कर्म की साधना ।
कलयुग में है कहां भरत की भावना ।
युग–युग तक गूंजेगा नभ में एक अमिट यश-गान ।
भरत जी तुम थे भरत – समान ।

रामकथा-साहित्य में भरत

[फादर कामिल बुल्के, मानरेसा हाउस, राँची]

हिन्दी पाठकों के लिये रामकथा-साहित्य की असंख्य रचनाओं में से दो ही सर्वाधिक महत्व रखती हैं—वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस। वाल्मीकि ने भ्रातृवत्सल भरत के अस्वार्थ पर विशेष बल दिया है और तुलसी ने भरत को आदर्श रामभक्त के रूप में प्रस्तुत किया है।

अयोध्या, किष्किंधा तथा लंका तीनों में अग्रज के स्थान पर अनुज को राज्य मिलता है। वाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव और विभीषण अपने भाई का राज्य स्वीकार करने में नहीं हिचकते, बल्कि उसे चाहते ही थे। सुग्रीव के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं। विभीषण के विषय में राम स्वयं कहते हैं—

"राज्याकांक्षी च राक्षसः"

(युद्धकाँड १८, १३)

जब भरत से अनुरोध किया जाता है कि वे राज्य ग्रहण कर लें तो वह आम सभा में गुरु की भर्त्सना करते हैं—

विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्।

(अयो० ८२/१०)

यही नहीं, वह अपनी माता को राक्षसी कहते हैं—

नत्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः।
राक्षसी तत्र जाताऽसि कुलप्रध्वंसिनी पितुः॥ (२/७४/९)

और उसका वध भी कर डालते, यदि वह नहीं समझते कि राम को वह बात अप्रिय होती है—

हन्यामहमिमां पापां कैकेयी दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥

(अयोध्या० सर्ग ७८ श्लो० २२)

गुरु भरत को इसलिये धन्य और अद्वितीय कहते हैं कि वह अनायास प्राप्त हुआ राज्य अस्वीकार करते हैं—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि॥

(अ० कां० सर्ग ८५ श्लो० १२)

भरत राम से मिलने जाते हैं क्योंकि जब तक वह राम, लक्ष्मण और सीता को नहीं देखते तब तक उन्हें शान्ति नहीं प्राप्त होगी—

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति। (अ० स० ९८ श्लो० ६)

रावण - वध के बाद जब राम वानरों के साथ अयोध्या लौटते हैं, तो भरत राम को सहर्ष राज्यभार सौंपते हुए कहते हैं कि "अब मेरा जन्म कृतार्थ है और मेरा मनोरथ पूरा हो गया है क्योंकि मैं आपको अयोध्या में लौटा हुआ देखता हूं" —

अद्य जन्मकृतार्थं मे संवृतश्च मनोरथः।
यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥

(युद्ध कांड १३० श्लोक ५४, ५५)

भरत के ये उद्गार सुनकर सुग्रीव तथा विभीषण के मन में क्या विचार उत्पन्न हुए होंगे, वाल्मीकि इसके विषय में मौन हैं, वह इतना ही कहते हैं कि भरत की बातें सुनकर वानर तथा विभीषण रोने लगे—

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम्।
मुमुचुर्वानरा वाष्पं राक्षसश्च विभीषणः॥ (युद्ध कांड सर्ग १२०)

२—तुलसी ने अपने अयोध्याकाण्ड को 'भरत - चरित' कहा है—

भरत चरित करि नेम, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होय भव रस विरति॥ (३२६)

वास्तव में भरत अयोध्याकाण्ड का नायक है। प्रारम्भ में जब राम–सीता के शरीर में शुभ शकुन होते हैं, तो वे समझते हैं कि ये भरत के आगमन के सूचक हैं—

राम सीय तन सगुन जनाये।
फरकहिं मंगल अंग सुहाये॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं।
भरत आगमन सूचक अहहीं॥ (दोहा ७)

सभी पात्रों द्वारा भरत के महत्व का प्रतिपादन होता है। भरद्वाज का विचार है कि राम के बनवास का वास्तविक रहस्य यह है कि उसके माध्यम से भरत की रामभक्ति प्रकट हो जाये—

रामभक्ति - रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु। (२०८)

तुलसी देवताओं को भी भरत का भक्त बना देते हैं, वे एक दूसरे से कहते हैं—

हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं।

यह सुनकर बृहस्पति कहते हैं—

सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुराग।

कारण यह है कि—

भरत सरिस को राम सनेही।
जगु जपु राम राम जपु जेही॥

राम अपने भक्त के वश में है—

"रघुपति भगत भगति बस अहहीं"

जनक के अनुसार राम स्वयं भरत की महिमा का वर्णन करने में असमर्थ हैं।

भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं रामु न सकहि बखानी॥

तुलसी भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करते हुए और इस बात पर बल देने के उद्देश्य से कि भक्ति तथा कर्तव्य का समन्वय होना चाहिये। यहां तक कह डालते हैं कि भरत का जीवन राम की जीवनचर्या से श्रेष्ठ है—

लखन राम सिय कानन बसही।
भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू।
सब विधि भरत सराहन जोगू॥

३—बाल्मीकि रामायण में अयोध्या काण्ड के बाद भरत के कथानक में कोई विशेष स्थान नहीं है। उत्तर काण्ड में इसका उल्लेख किया गया है कि भरत ने सीता हरण का समाचार सुनकर सब राजाओं को बुलाया था और वे अपनी सेनाओं के साथ अयोध्या भी आये थे, किन्तु वे युद्ध में भाग नहीं ले सके—

भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम्। (३९४)

बाल्मीकि के गौडीय पाठ के अनुसार हनुमान ने अपनी हिमालय - यात्रा के समय भरत को युद्ध का समाचार दिया था, तब भरत कात्रेय, जनक, केकय आदि राजाओं को बुलाकर युद्ध की तैयारियां करने लगे थे। (युद्धकांड) 'जैन वसुदेव हिंदि' में माना गया है कि भरत ने सुग्रीव द्वारा युद्ध का समाचार पाकर एक चतुरंगिनी सेना भेज दी थी, जो समय पर समुद्र तट पर पहुंची थी।

कथानक में भरत के स्थान को और महत्व देने के उद्देश्य से उत्तरकांड के गायकों ने भरत द्वारा गन्धर्व देश की विजय - यात्रा का वर्णन किया है। (वाल्मीकि रामायण का उत्तरकांड सर्ग १००, १०१)। रामकियेन' में भरत और शत्रुघ्न को भी युद्ध करने का अवसर दिया गया है। रावण - वध तथा अयोध्या में राम के प्रत्यागमन के बाद रावण का एक पुत्र विभीषण के विरुद्ध विद्रोह करता है। भरत और शत्रुघ्न रामसेना के साथ लंका के लिये प्रस्थान करते हैं और रावण के पुत्र को पराजित कर विभीषण को पुनः राज्य दिलाते हैं। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन प्रथम युद्ध की पुनरावृत्ति मात्र है।

४—वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब राम अयोध्या लौटते हैं, तो भरत कहते हैं कि मैं दुःसह राज्य भार संभालने में असमर्थ हूं।

किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे। (३)

भरत की इस असमर्थता का संकेत आगे चलकर एक अन्य वृत्तान्त का कारण बना। कृत्तिवास रामायण (१,५६) के अनुसार दशरथ ने राम और लक्ष्मण के स्थान पर भरत तथा शत्रुघ्न को विश्वामित्र के साथ भेज दिया। सरयू तट पर पहुंचकर विश्वामित्र ने राजकुमारों से कहा, "यहां से दो मार्ग हैं। पहले मार्ग से जाने में हमें तीन दिन लगेंगे, दूसरे से हम तीसरे पहर पहुंच जायेंगे, किन्तु इसमें ताड़का राक्षसी का भय रहता है।" भरत ने उत्तर दिया कि "दूसरे पथ से हमें क्या प्रयोजन है।" इस उत्तर से विश्वामित्र समझ गये कि दशरथ ने उन्हें धोखा दिया है और अयोध्या लौटकर उन्होंने राम और लक्ष्मण को मांग लिया।

यह कथा सरला दास उड़िया महाभारत निर्होर नामक आदिवासी जन-जातियों की रामकथा तथा हिन्देशिया के सेरीराम में भी मिलती है।

५—वाल्मीकि रामायण के कथानक में राम-लक्ष्मण के प्राधान्य के फलस्वरूप कुछ विदेशी रामकथाओं में भरत - शत्रुघ्न का उल्लेख तक नहीं किया गया गया है। तिब्बती रामायण में दशरथ की दो पत्नियों के एक - एक पुत्र होता

है। विष्णु कनिष्ठा के गर्भ से जन्म लेते हैं और रामन कहलाते हैं। और तीन वर्ष बाद विष्ण पुत्र जेष्ठा से उत्पन्न होते हैं और उनका नाम लक्ष्मण रक्खा जाता है। खोतानी (पूर्वी तुर्किस्तान) रामायण और लाओस के रामजातक में भी भरत - शत्रुघ्न का निर्देश तक नहीं मिलता।

६—जैन कवि विमल सूरि के पउम चरियं (२५, १४) में पहले - पहल भरत तथा शत्रुघ्न को यमल माना गया है। निम्नलिखित रचनाओं में भी भरत तथा शत्रुघ्न सहोदर भाई ही माने गये हैं—वसुदेव हिण्डि (संघदास) उत्तर पुराण, (गुणभद्र) आनन्द रामायण (१, २, १०), मराठी भावार्थ रामायण (१, ६) हिन्देशिया की दो राजकथायें, हिकायत, महाराज रावण तथा सेरीराम।

भरत तथा लक्ष्मण में से कौन ज्येष्ठ है, इसके बिषय में वाल्मीकि रामायण के पाठों में मतभेद है। उदीच्य (गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय) पाठों में भरत कनिष्ठ माने जाते हैं, लेकिन दाक्षिणात्य पाठ में लक्ष्मण कनिष्ठ हैं (१, १८, १३, १४)। अधिकांश परिवर्ती रामकथाओं में दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार भरत लक्ष्मण के अग्रज हैं।

७—भरत के अवतारत्व का विकास इस प्रकार है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार भरत विष्णु के चतुर्थांश अवतार हैं (१, १८. १३, १४)। यही मत हरिवंश, विष्णु, वायु आदि पुराणों में भी मिलता है।

अंशावतार का एक अन्य रूप पांचरात्र के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार नारायण चतुर्व्यूह के रूप में आविर्भूत हुए—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (अध्याय २१२) तथा नारद पुराण (उत्तरकांड, अध्याय ७५) में माना गया है कि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः उस चतुर्व्यूह से अभिन्न हैं।

रामभक्ति के प्राक्कथन के पश्चात अधिकांश रचनाओं में राम विष्णु के पूर्णावतार हैं; लक्ष्मण शेष के और भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः पांचजन्य शंख तथा सुदर्शन चक्र के अवतार (अध्यात्म रामायण १, ४, १७) माने गये हैं।

धर्म और राम-प्रेम की एक साथ प्रतिमा

श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव अनुराग'
ज्ञानकुटी शिवपुरी, लखनऊ

उन्नतिं निखिलां जीवः धर्मेणैव क्रमादिह ।
विदधानाः सावधाना लभन्तेऽन्ते परम पदम् ।। वेद व्यास ।।

अर्थात् सारे जीवों की उन्नति क्रमशः धर्म के द्वारा ही होती है। और इस प्रकार सावधानी के साथ धर्म का आचरण करते हुए अन्त में सभी जीव परमपद को प्राप्त होते हैं।

उक्त श्लोक से यह संकेत स्पष्ट है कि धर्म वास्तव में उन्हीं क्रियाओं अथवा उन्हीं आचरणों का नाम है जो क्रमशः जीव को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सच्चिदानन्दघन परमात्मा की ओर आगे बढ़ाने में सहायक हों। इसके विपरीत सब अधर्म है। यह धर्म मुख्यतः दो प्रकार के हैं—

१- लोक संग्रह परक परोक्ष धर्म; जिनमें मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति का लक्ष्य अन्तर्निहित रहते हुए भी प्रत्यक्षतः लोक संग्रह का ही प्राधान्य रहता है। इस प्रकार के धर्मों का क्षेत्र कर्म क्षेत्र है, और इन धर्मों के अधिकारी लोक में स्वभावतः अधिक संख्या में होते हैं।

२- मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति परक प्रत्यक्ष भागवत धर्म; जिसमें लोक संग्रह के अवकाश की संभावना रहते हुए भी, साधक का लक्ष्य सीधे मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति की ओर ही रहता है। इस प्रकार के धर्मों का क्षेत्र है, उपासना क्षेत्र।

अब प्राणिमात्र के जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष अथवा भगवान की प्राप्ति होने से, धर्म के एक सचेत और सावधान साधक के लिए, उपर्युक्त दोनों प्रकार के धर्मों पर ही श्रद्धा और आस्था होते हुए भी, ईश्वर भक्ति और उपासना रूप प्रत्यक्ष धर्म का महत्व अपेक्षाकृत अधिक होना स्वाभाविक है। पर यह बात खुले रूप में, धर्म के आदर्श पात्रों के चरित्र में, प्रायः उसी समय सामने आ पाती है, जबकि भगवत्भक्ति और उपासना परक प्रत्यक्ष धर्म के लिए लोक संग्रह परक परोक्ष अथवा सामान्य धर्मों का त्याग परिस्थिति वश आवश्यक हो जाता है।

श्रीरामचरित मानस के आदर्श पात्रों के चरित्रों में उपर्युक्त दोनों प्रकार के धर्म का दिग्दर्शन करने के लिए, भगवान श्रीराम तथा अन्य पात्रों के सम्बन्ध में एक बात समझ लेना आवश्यक है; वह यह कि मानस के अन्तर्गत भगवान श्री राम को कहीं पर नर नाट्य की मर्यादानुसार एक आदर्श राजकुमार के भाव में, और कहीं स्वयं परब्रह्म परमात्मा के अवतार को लक्ष्य किया गया है। अतएव जहां केवल नर नाट्य का प्रसंग है; वहां अन्य पात्रों के द्वारा उनके प्रति, लोक संग्रहात्मक परोक्ष अथवा सामान्य धर्मों का व्यवहार ही चरितार्थ हुआ है; पर जिन प्रसंगों में अन्य पात्रों के द्वारा उन्हें स्वयं परमात्मा के भाव में लक्ष्य किया गया है, वहाँ लोक संग्रहात्मक धर्मों से उनके प्रति प्रेम और भक्ति भावना में विक्षेप और विरोध पड़ने की स्थिति में उन लोक संग्रहात्मक परोक्ष अथवा सामान्य धर्मों की सर्वथा उपेक्षा कर उन पर परम प्रभु परमात्मा के अवतार श्रीराम के प्रति भक्ति और उपासना परक प्रत्यक्ष धर्म की उत्कृष्टता ही चरितार्थ होती है। ऐसे प्रसंग एक साथ ही विशेष रूप से अयोध्या कांड के पात्रों में मिलते हैं, कारण कि लोक संग्रहात्मक परोक्ष अथवा सामान्य धर्म के आदर्शों के लिए अयोध्या कांड मुख्य रूप से प्रसिद्ध है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के धर्मों का सबसे अधिक खुला हुआ रूप अयोध्या कांड में वन यात्रा के अवसर पर भगवान श्री राम और लक्ष्मण के वार्तालाप में मिलता है। कई प्रमुख पात्रों के चरित्र उक्त दोनों प्रकार के धर्मों का एक साथ ही दर्शन होते हुए भी अन्ततोगत्वा उत्कर्ष भगवत्भक्ति और उपासना परक प्रत्यक्ष धर्म का ही व्यक्त हुआ है। ऐसे प्रमुख पात्रों में मुख्य रूप से, धर्म और श्री राम प्रेम की एक साथ ही साक्षात् मूर्ति 'भरत' और महाराज 'दशरथ' सामने आते हैं। पर इस निबन्ध का मुख्य विषय भरत चरित्र है; इसलिए इस स्थान पर मुख्य रूप से हम भरत चरित्र पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

भरत चरित्र में सबसे पृथक यह विषय अयोध्या के दरबार में आता है। गुरु वशिष्ठ भरत को लोक संग्रह परक परोक्ष अथवा सामान्य धर्म की ओर ही प्रवृत्त करते हुए दिखाई पड़ते हैं। पिता द्वारा प्राप्त राज्य को स्वीकार कर के प्रजा पालन पर ही जोर देते हैं, और उत्तरोत्तर अनेक युक्तियों को सामने रखकर इसी बात के औचित्य की पुष्टि करते हैं; जैसा कि उक्त प्रसंग की निम्नलिखित पंक्तियों से बिल्कुल स्पष्ट है—

राय राज पद तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा ।।
तजे राम जेहि बचनहि लागी । तनु परिहरेउ राम बिरहागी ।।
नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रमाना ।।
करहु सीस धरि भूप रजाई । हइ तुम्ह कहँ सब भांति भलाई ।।

★ ★ ★ ★

वेद विदित संमत सब ही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।
करहु राज परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ।।
सुनि सुख लहब राम बैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही ।।
कौसिल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ।।

मन्त्री वर्ग तथा माता कौशल्या ने भी वशिष्ठ जी की बात का ही समर्थन किया । यथा :—

कीजिअ गुरु आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आए उचित जस, तस तब करब बहोरि ।।

★ ★ ★ ★

कौसिल्या धरि धीरज कहई । पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ।।

अब भरत के उत्तर पर ध्यान दीजिए :—

मोहिं उपदेश दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव सम्मत सबही का ।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ।।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ।।

भगवान श्री राम के द्वारा उपदेश किए हुए लोक संग्रह परक धर्मों की खुले शब्दों में जितनी उपेक्षा लक्ष्मण ने उनकी सेवा में बन को साथ चलने के आग्रह में की थी; उस प्रकार यहां भरत ने नहीं किया; किन्तु रेखांकित पंक्तियों 'अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा' तथा 'सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी' से सामान्य रूप से उन लोक संग्रहात्मक धर्मों के पालन में भी अपनी आस्था ही प्रकट की; फिर भी परिस्थिति वश अपने हृदय की विशेष दशा को सामने उपस्थित कर उनके पालन में अपनी असमर्थता और अयोग्यता प्रकट कर वर्तमान स्थिति के अनुकूल कोई दूसरी शिक्षा देने की प्रार्थना की। यथा :—

अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहू । मोहिं अनुहरत सिखावन देहू ।।

साथ ही अपना मुख्य विचार और अभिप्राय भी प्रकट किया। यथा :—

हित हमार सिय पति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे॥

* * * *

जाउँ राम पहं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥

* * * *

आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय की जरनि न जाइ॥

अब साधारण दृष्टि से देखने पर भरत चरित्र में भी उपर्युक्त प्रसंग से उनका बड़े भाई के लिए पिता द्वारा प्राप्त राज्य वैभव का त्याग और प्रेम तथा भायप का अनूठा निर्वाह; यह लोक संग्रह-परक सामान्य धर्म के ही उच्चतम आदर्श की रूप-रेखा सामने आती है और सर्व साधारण के बीच आदर्श के रूप में यही बात प्रसिद्ध भी है। पर इसी प्रसंग में अन्तिम रूप से अपनी मुख्य धारणा तथा विचार प्रकट करते हुए उसकी आत्यन्तिक पुष्टि में जो दृष्टान्त अथवा उदाहरण भरत ने दिये हैं उन पर ध्यान देने से तो भगवान श्री राम के प्रति शुद्ध प्रेम और भक्ति-निष्ठा में विक्षेप और बाधा उपस्थित करने वाले सारे ही लोक संग्रह-परक धर्मों का एक समष्टि रूप से एक साथ ही, लक्ष्मण के कथन के अनुरूप ही खुला तिरस्कार हो जाता है, भले ही वह गुरु, पिता, माता की आज्ञा और प्रजा पालन रूप वेद विहित धर्म ही क्यों न हो। वह ध्यान देने योग्य अर्द्धालियां यह हैं :—

बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥
सरुज सरीर बादि सब भोगा। बिनु हरि भगति जाय जप जोगा॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई॥

अब विचार करने की बात है कि श्री राम प्रेम की शुद्ध निष्ठा में विक्षेप जनक प्रतीत होने पर इस प्रकार समष्टि रूप से सारे ही लोक संग्रह परक धर्मों की खुली खुली घोषणा के साथ इस प्रकार चुनौती दे देना, भगवान श्री राम को जीव के सर्वस्व, सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म के अवतार स्वयं भगवान समझ करके, लक्ष्मण के ही समान अपने परम प्रभु मानने के भाव में ही यथार्थ रूप से उपयुक्त माना जा सकता है, न कि लौकिक दृष्टि से केवल बड़े भाई मानने के भाव में।

अतएव भरत चरित्र के अन्तर्गत उपर्युक्त अयोध्या दरबार के प्रसंग में निश्चित रूप में भरत के प्रति गुरु वशिष्ठ का उपदेश और मंत्रियों तथा माता कौशल्या द्वारा उनका समर्थन मुख्यत: लोक संग्रह परक परोक्ष अथवा सामान्य धर्मों का पोषक और भरत का उत्तर, वेद प्रतिपादित धर्म के अन्तिम लक्ष्य भगवद्भक्ति और उपासना-परक प्रत्यक्ष धर्म के उत्कर्ष का द्योतक है।

चित्रकूट दरबार के प्रसंग में इस सम्बन्ध में भरत के आदर्श का अवलोकन कीजिए।

अयोध्या दरबार में वशिष्ठ जी ने भरत के प्रति पिता के द्वारा प्राप्त राज्य को स्वीकार करके प्रजा पालन के कार्य में संलग्न होने के लिए जोर अवश्य डाला है और उस समय वे इस सम्बन्ध में, लोक संग्रह परक, परोक्ष अथवा सामान्य धर्म के उपदेश तक ही सीमित रहे; पर आगे चित्रकूट में श्री रामावतार के मर्मी उन्हीं वशिष्ठ जी ने जो समस्या भरत के सामने उपस्थित की; उसमें स्पष्ट रूप से भगवान श्री राम की बन यात्रा में, दुष्टों के विनास, देवताओं की सहायता तथा भू भार हरणार्थ स्वयं और पिता के उनके ही बचन पालन की बात को केवल एक संयोग मात्र ठहराया; जैसा कि चित्रकूट की पहली सभा में भरत और अन्य सभासदों के समक्ष वशिष्ठ जी के निम्नलिखित वाक्यों में बिल्कुल स्पष्ट है :—

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना।।
धरम धुरीन भानु कुल भानू। राजा राम स्ववस भगवानू।।
सत्य संध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू।।
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी।।
नीति प्रीति स्वारथ परमारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।।
बिधि हरिहर ससि रवि दिसि पाला। माया जीव करम कुलि काला।।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्ध निगमागम गाई।।
करि बिचार जिय देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबही के।।

राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ।।

★ ★ ★ ★

सब कहुं सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू।।
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ।।

गुरु वशिष्ठ के उपर्युक्त वाक्यों के अन्तर्गत विशेष रूप से रेखांकित पंक्तियों पर ध्यान देने से उनकी ओर से वह संकेत बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है, कि श्री राम चन्द्र परब्रह्म के अवतार स्वयं भगवान हैं। देवतावों की सहायता और भूभार हरणार्थ, असुरों का नाश करने के लिए वन यात्रा का कार्यक्रम वास्तव में उनका अपना ही निज संकल्प है। कैकेयी का वरदान और पिता के वचन पालन की बात उसी संकल्प के कार्यान्वित होने के लिए एक उपयुक्त बहाना मात्र है। उनकी इच्छा समस्त विश्व के ऊपर है। अतः हम लोगों का हित भी वास्तव में उनकी इच्छानुसार चलने में ही है।

भरत ने वशिष्ठ जी के कहे हुए वाक्यों के पूर्वोक्त संकेत को भली प्रकार ताड लिया और उनके उस मार्मिक संकेत को ही हृदयंगम कर भगवान श्री राम को वन से अयोध्या लौटाने के अपने आग्रह को यहीं से शिथिल कर सब प्रकार से श्री राम की इच्छा का अनुकरण ही अपना परम कर्तव्य निश्चय किया और आगे चलकर गुरु वशिष्ठ के ही अनुरोध पर जब स्वयं भगवान राम चन्द्र ने भी सारा निर्णय भरत के ऊपर ही छोड़ दिया। यथा :—

कहउँ सुभाव सत्व सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥

★ ★ ★ ★

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके। करौं काह असमंजस जी के॥
राखेउ राय सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु।

तब भरत ने गुरु वशिष्ठ के पूर्व संकेत के अनुसार अपने उस निश्चय को ही कार्यान्वित किया। यथा :—

निज सिर भार भरत जिय जाना। भरत कोटि विधि उर अनुमाना॥
करि विचार मन दीन्हीं ठीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥

और सभा के बीच भगवान श्री राम को वन से अयोध्या लौटने के पूर्वाग्रह को भी ध्वनति करते हुए, अन्ततोगत्वा उनकी स्वकीय इच्छा के अनुकूल निःसंकोच आदेश को ही आमन्त्रित करके उसी में अपना परम सुख और संतोष

प्रकट किया; जैसा कि उस प्रसंग की विस्तृत वार्ता के अन्तर्गत निम्नलिखित पंक्तियों से बिल्कुल स्पष्ट है :—

कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबु निधि अन्तरजामी ॥

★ ★ ★ ★

अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभुचित छोभ न होई ॥
जो सेवक साहबहि सकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ विहाई ॥
स्वारथ नाथ फिरे सब ही का। किए रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥

★ ★ ★ ★

जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥

★ ★ ★ ★

अब कृपालु मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सब, मिटिहि अनट अवरेव ॥

इसी अवसर सहित समाज मिथिला से जनक जी के आगमन का समाचार प्राप्त होने से आगे की वार्ता स्थगित हो गई। अतः अन्तिम दरबार में भरत जी के पुन: बोलने का अवसर आने पर उन्होंने भगवान श्री राम के प्रति फिर अपनी इसी धारणा को बहुत स्पष्ट शब्दों में दोहराते हुए उनके आदेश को ही आमन्त्रित किया। यथा उस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ :—

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउं इहां समाज सकेली ॥

★ ★ ★ ★

राम रजाइ मेटि मन माहीं। देखा सुना कतहुं कोउ नाहीं ॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥

★ ★ ★ ★

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयउ लाइ रजायसु बाएँ ॥
तबहुं कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेहु मोरा ॥
देखउँ पायँ सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥

★ ★ ★ ★

राखा मोर दुलार गोसाइं। अपने सील सुभायँ भलाई ॥

★ ★ ★ ★

मग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा ॥

अब भरत के इस प्रकार कहने पर अनेक प्रकार से भरत को समझाते और सान्त्वना देते हुए, भगवान रामचन्द्र ने भी उन्हें अयोध्या लौट कर पिता के वचन के अनुसार राज्य भार सम्हालने की जो प्रेरणा दी; वह अयोध्या से वन यात्रा के अवसर पर लक्ष्मण को समझाने जैसे; अथवा अयोध्या दरबार में गुरु वशिष्ठ द्वारा भरत को ही समझाने जैसे, केवल लोक संग्रह परक, नीति धर्म के उपदेश के रूप में नहीं, किन्तु स्वयं व्यक्तिगत रूप से अपने धर्म और कर्तव्य का निर्वाह करने में उनको अपने परम सहयोगी अंग के रूप में प्रदर्शित करते हुए। जैसा कि निम्नलिखित प्रमुख अर्द्धालियों में स्पष्ट है :—

जानहु तात तरनि कुल रीती । सत्य संध पितु कीरति प्रीती ।।

★ ★ ★ ★

तुम्हहिं विदित सबही कर करमू । आपन मोर परमहित धरमू ।।
मोहिं सब भांति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ।।

★ ★ ★ ★

मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनी धर सेसू ।।
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनि कुल पालक होहू ।।

★ ★ ★ ★

बाँटी विपति सबहिं मोहिं भाई । तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई ।।
जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ।।
होहिं कुठायँ सुबधु सहाए । ओड़िअहि हाथ असनिहु के घाए ।।

अतएव पिता के द्वारा प्राप्त जिस राज्य और प्रजा पालन रूप कर्तव्य को केवल लोक संग्रह परक सामान्य धर्म के रूप में, वशिष्ठ जी के बहुत समझाने पर भी नहीं स्वीकार किया; उसी कर्तव्य और राज्य भार के वहन को भगवान राम की ही इच्छा समझ लेने पर तथा स्वयं उन प्रभु के द्वारा व्यक्तिगत रूप से अपने ही निश्चय कर्तव्य और धर्म के निर्वाह में सहयोगी अंग के रूप में प्रदर्शित करने पर केवल स्वीकार ही नहीं किया किन्तु हृदय से परम सुख और संतोष व्यक्त किया। यथा —

भरतहिं भयउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि विमुख दुख दोषू ।।
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू । भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू ।।
नाथ भयउ सुख साथ गये को । लहेउँ लाभ जग जनम भए को ।।
अब कृपालु जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ।।

अब यहां से लक्ष्मण और भरत के आदर्श में कुछ अन्तर दिखाई देने लगता है, और वह अन्तर भी सिद्धान्ततः सार्थक है। वह इस प्रकार कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अवतार में, चरित्र के अन्तर्गत, सपरिकर श्री रामचन्द्र का चरित्र लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों दृष्टियों से समाज के लिये आदर्श होने से, रामचरित मानस के अन्तर्गत विभिन्न पात्रों के द्वारा विभिन्न प्रकार के आदर्शों का चित्रण उपस्थित हुआ है। प्रभु के प्रति प्रेम भक्ति की निष्ठा में भी, प्रकृति वैचित्र्य अथवा विशेष परिस्थितियों के कारण उस निष्ठा की रूपरेखा में, भक्तों में वैभिन्य हुआ करता है। उन सभी प्रकार की निष्ठाओं का अपना-अपना विशेष महत्व हुआ करता है। वे विभिन्न प्रकृति अथवा स्थिति वाले भक्तों के लिये सभी निष्ठाएँ आदर्श होती हैं।

भक्तों के सामने कभी-कभी स्थिति ऐसी भी सम्भव होती है जब कि भगवान के सान्निध्य और प्रत्यक्ष सेवा से दूर रह कर ही संभव होने वाले, लोक संग्रहात्मक सामान्य धर्मों में, भक्त की सर्वथा अरुचि होते हुए भी स्वयं अपने इष्ट और आराध्य भगवान की ओर से ही, केवल कर्तव्योचित उपदेश के रूप में नहीं, उनकी निज इच्छा अथवा आदेश के रूप में, उन लोक संग्रहात्मक धर्मों के पालन का भार सुख और संतोष के साथ वहन करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। लक्ष्मण के अन्तःकरण में भी, भगवान श्री राम की ओर से बन को साथ चलने की स्पष्ट स्वीकृति न मिल जाने तक उपर्युक्त स्थिति के सामने आ जाने की आशंका साथ में बनी ही रही। वह यह कि यदि प्रभु ने केवल धर्म शिक्षा के रूप में मुझे अयोध्या में रहने को कह दिया; तब तो फिर रहना ही पड़ेगा। इस प्रकार की आशंका का संकेत, भगवान रामचन्द्र के समझाने पर अपना उत्तर आरम्भ करने के पूर्व ही, उस स्थल की निम्नलिखित पंक्तियों में अगर उनकी अति आर्त दशा तथा उनके द्वारा अति व्याकुलता में निकले हुए शब्दों से ही स्पष्ट हो जाता है। यथा—

सियरे बचन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

★　★　★　★

उतर न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ॥

कुशल यही रही कि, भगवान राम ने अपने वचनों को आदेश का रूप न देकर लोक संग्रहात्मक धर्म और नीति की शिक्षा तक ही सीमित रखा था। साथ ही उनकी अति व्याकुलता को देख और विनीत बचन सुन, सहज ही बन

को साथ चलने की स्वीकृति प्रदान कर दी। अतः लक्ष्मण को उन लोक संग्रह परक धर्मों की ओर प्रवृत्त होने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ा।

परन्तु भरत के सामने तो वह समस्या भी खुले रूप में आ ही गई। वह इस प्रकार कि, अयोध्या दरबार में वशिष्ठ जी के द्वारा धर्म और नीति के रूप में समझने पर भगवान श्री राम के सान्निध्य और प्रत्यक्ष सेवा के लिए लक्ष्मण के समान ही सारे लोक संग्रह परक धर्मों की खुले रूप में उपेक्षा कर दी। पर आगे चित्रकूट में उन्हीं गुरु वशिष्ठ के द्वारा वन यात्रा में स्वयं भगवान श्रीराम की निज इच्छा को मुख्य कारण के रूप में सकेत कर देने पर उन्हें बहुत गहरे विवेक और विचार से काम लेना पड़ा, जिसके सम्बन्ध में मानस के अन्तर्गत स्वयं गुरु वशिष्ठ और जनक ऐसे प्रमुख ज्ञानी पात्रों को चकित रह जाना सूचित है। यथा स्वयं गुरु वशिष्ठ के सम्बन्ध में—

भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अबला सी॥
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावत नाव न बोहित बेरा॥

जनक जी के बचन सुनयना के प्रति—

धरम राजनय ब्रह्म बिचारु। इहाँ जथा मति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महि माहीं। कहहु काह छलि छुअति न छाहीं॥

★ ★ ★ ★

साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

इस प्रकार स्वयं भगवान की इच्छा और आदेश के अनुसार उनकी सेवा के रूप में, उनके सान्निध्य और समीप की सेवा से दूर रह कर लोक संग्रहात्मक सामान्य धर्म के वहन का भार स्वीकार कर लेने पर भी भक्त हृदय में भगवान के प्रति तीव्र बिरह वेदना की स्थिति में उस कर्तव्य भार को सुचारु रूप से सम्हालते हुए प्रेम के साथ जीवित रहने के लिए भगवान की ओर से कुछ विशेष आधार भी गुप्त रूप से भक्त को प्राप्त रहता है, जिसका संकेत ही, भरत चरित्र में प्रभु श्री राम के प्रति, भरत के द्वारा अवलंबन माँगने के रूप में निम्नलिखित अर्द्धाली में व्यक्त हुआ है। यथा—

सो अवलंब देव मोहिं देई। अवधि पार पावौं जेहि सेई॥

भरत की इस प्रार्थना के अनुसार ही भगवान रामचन्द्र ने उन्हें अपनी चरण पादुका दी।

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥

इस प्रकार श्री राम का आदेश प्राप्त कर अयोध्या में पहुंच उन चरण पादुकाओं को ही राज्य सिंहासन पर पधार कर नित्य उन्हीं का पूजन कर उन्हीं के सहारे प्रभु श्री राम की उपस्थिति का अनुभव करते हुए उन्हीं से आज्ञा ले लेकर समस्त राज-काज सम्हालने लगे।

इस प्रकार राज कार्य को सम्भालते हुए, साथ ही दृढ़ नेम और प्रगाढ़ प्रेम के साथ भगवान श्री राम की आराधना में भी संलग्न हुए।

नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा॥
जटा जूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुश साथरी सँवारी॥
देह दिनहु दिन दूबरि होई। घट न तेज बल मुख छबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पन पीना। बढ़त धरम दल मन न मलीना॥
पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥

अब इस प्रकार भगवान के आदेश से उनकी सेवा रूप में लोक संग्रहात्मक धर्मों में प्रवृत्त होते हुए भी, कहीं भूल से उनमें अपनी अहंता, ममता और आसक्ति का बंधन न स्थान कर ले; अतः साधक को सावधान रहना उचित और आवश्यक है।

अवध राज सुर राज सिहाहीं। दशरथ धन लखि धनद लजाहीं॥
तेहि पुर भरत बसत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

भरत चरित्र में, सर्व धर्मों के अन्तिम लक्ष्य, भगवद्भक्ति और उपासना परक प्रत्यक्ष धर्म और लोक संग्रहात्मक सामान्य धर्म दोनों ही अपूर्व समन्वय के साथ एक साथ ही उत्तम कोटि की आदर्श रूपता को प्राप्त हुए हैं।

यह भरत चरित्र की असाधारण विशेषता है; जिसकी घोषणा मानस के ही अन्तर्गत अनेक स्थलों पर निर्णायक वाक्यों में स्पष्ट है, यथा—

जो न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

अयोध्या काण्ड की समाप्ति पर—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥

★ ★ ★ ★

भरत चरित करि नेम, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस बिरति॥

तथापि भगवान की इच्छा और उनका आदेश समझकर लोक संग्रह परक धर्मों में प्रवृत्त होने का यह अर्थ नहीं कि, सामान्य धर्मों की प्रवृत्ति को ही अपना अन्तिम लक्ष्य बना सदा के लिए उसी में व्यस्त रहकर भगवान के प्रत्यक्ष सान्निध्य की प्राप्ति रूप अपने मुख्य ध्येय को भुला दिया जाय। किन्तु ऐसी स्थिति में, भक्त साधक के लिए उन धर्मों में प्रवृत्ति की भी सीमा रहनी चाहिए। और उस सीमा पर दृष्टि रखने के लिए भी इस कोटि के भक्त साधक को सचेत और सावधान रहना चाहिए। भरत चरित्र में यह स्थिति आदर्श रूप में उत्तर कांड के आरम्भ में सामने आ जाती है। वह इस प्रकार कि, चित्रकूट में स्वयं भगवान रामचन्द्र जी की इच्छा और उनका आदेश समझ उनकी ही सेवा रूप में, अवश्य ही भरत ने राज्य प्रबन्ध और प्रजा पालन रूप लोक संग्रह परक सामान्य धर्म के उत्तरदायित्व को पूरी तरह स्वीकार कर लिया. साथ ही प्रभु श्रीराम की तीव्र विरह वेदना की दशा में, अपने जीवन को सम्हालने के लिए कुछ आधार की भी याचना की। प्रभु श्रीराम ने उस आधार के रूप में उन्हें अपनी चरण पादुका दी। इतना सब होते हुए भी, भरत के लिए उस लोक संग्रहात्मक धर्म, राज्य भार को सम्हालने की सीमा निर्धारित रही। वह सीमा थी चौदह वर्ष की अवधि। उसके पूरे होने में जब एक दिन ही शेष रह गया, उस समय भरत की स्थिति का अवलोकन कीजिये। यथा—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा ॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ॥
जौं करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥
बीती अवधि रहहिं जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना ॥

उधर लंका में बैठे हुए भगवान श्रीराम पर भी उनकी उस विरह वेदना की क्या प्रतिक्रिया होती है। वह विभीषण के प्रति, उनसे ही प्राप्त, लंका के अपने राजगृह में पधारने की प्रार्थना करने पर प्रभु श्रीराम की दशा तथा उनके उत्तर में देखिए—

सुनत बचन मृदु दीन दयाला। सजल भए दोउ नयन विसाला ॥
तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु तात।
भरत दशा सुमिरत मोहि, निमिष कलप सम जात ॥
तापस वेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहि।
देखौं वेगि सो जतन कर, सखा निहोरउँ तोहि ॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जिअत न पउवँ बीर।

इस प्रकार श्रीराम विरह में भरत अति विकल होते ही, प्रभु श्रीराम प्रेषित पवन तनय हनुमान १४ वर्ष की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही, विप्र रूप धारण कर, सीता लक्ष्मण समेत प्रभु श्रीराम के शीघ्र ही श्री अवध पहुँचने का समाचार लेकर भरत के समीप आ उपस्थित होते हैं। यथा—

राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
विप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत ।।

ईश्वरी आदेश मानकर लोक संग्रह परक सामान्य धर्मों में प्रवृत्त होने वाले भगवद्भक्त कर्मयोगियों के अनुकरण के लिए धर्म और श्रीराम प्रेम के एक साथ ही साक्षात् प्रतीक, भरत का आदर्श सर्वांगपूर्ण आदर्श है; जिसमें लोक संग्रह परक परोक्ष अथवा सामान्य धर्म और भगवान के सान्निध्य तथा प्रत्यक्ष सेवा परक, भगवद्भक्ति और उपासना रूप प्रत्यक्ष धर्म दोनों के ही सर्वांगपूर्ण समन्वय में वर्तते हुए भी अन्ततोगत्वा पुनः भक्ति और उपासना रूप प्रत्यक्ष धर्म की ही उत्कृष्टता सामने आ जाती है।

* केकय देश *

(श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती वेदान्त वागीश वेद मंदिर वामन हरदोई)

श्री भरत जी का नाम स्मरण होते ही तत्काल उनकी जननी श्री कैकेयी माता का भी नाम मन में स्फुरण होने लगता है। जब हम कैकयी शब्द पर दृष्टि डालते हैं तो स्वभावतः केकय देश का भी स्मरण आ जाता है। अतः भरत जी के साथ केकय देश का सम्बन्ध भी जुड़ा हुआ है। अतः उस देश का विचार अत्यावश्यक है। यद्यपि इस समय प्राचीन भारत के उन-उन प्रदेशों के नाम अव्यवहृत से हो गये हैं फिर भी वेद, पुराण, महाभारत, मनु, रामायण आदि ग्रन्थों में उन सभी देशों का उल्लेख मिलता है। उत्तरी भारत के काश्मीर कम्बोज, दरद, खश, सिन्धु, सौवीर, कन्धार, वाल्हीक, मत्स्य, कुरु, पाञ्चालादि देशों में ही एक केकय देश भी प्रसिद्ध था।

महाभारत के कौरव पाण्डव संग्राम में केकय देश के राजा भी युद्ध में भाग लेने के लिए आये थे ऐसा वर्णन मिलता है।

छान्दोग्योपनिषद में भी केकय नरेश अश्वपति के यहाँ सत्यप्रज्ञ आदि महाश्रोत्रिय पाँच महर्षि वैश्वानर विद्या की प्राप्ति के लिये गये थे ऐसा उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड के ६८ से ७० तक तीन अध्यायों में तो केकय तथा कोशल देश की यात्रा का विशद वर्णन प्राप्त होता है जिसके आधार पर सरलता से निर्णय किया जा सकता है कि यह केकय देश कहाँ पर है और इस समय उस प्रदेश का नाम क्या है और वहाँ पर कौन २ प्रसिद्ध नगर तथा पर्वत एवं नदियाँ हैं। अस्तु, अब इसी विषय पर परामर्श करना है।

जब श्री राघवेन्द्र जानकी एवं लक्ष्मण सहित अयोध्या शून्य करके वनवास के लिए चले गये तो वशिष्ठ मुनि ने राजदूतों को केकय देश में जहां भरत और शत्रुघ्न गये थे उनको लाने के लिए तीव्रगामी अश्वों द्वारा भेजा; यद्यपि कोशल देश से केकय देश की दूरी चार-पाँच सौ मील से कम न होगी फिर भी दूत रात्रि में केकय देश की तात्कालिक राजधानी गिरिव्रज महानगरी में पहुंचे। दूत लोग अयोध्या से उत्तर की ओर चलकर अमरताल, प्रलम्ब

नगर पार करके मालिनी नदी को पार किया। पुन पश्चिम चलकर पाञ्चाल, कुन, जांगल आदि देशों में होते हुए हस्तिनापुर के पास गंगा जी को पार किया तदन्तर शरदण्डा, इक्षुमती नदी को पार करके कुँलिगा नगरी होते वाल्हीक देश, सुदामापर्वत, विष्णुपद तीर्थ, शाल्मली और विपाशा नदी (व्यास नदी) को पार करके केकय देश की राजधानी गिरिव्रज में रात्रि को पहुंच गये।

फिर वहां से केकय नरेश मातामह अश्वपति और मातुल युधाजित के आदेशों से रथादि चतुरङ्गिणी सेना सहित दोनों भाई निम्नलिखित स्थानों में होते हुए अयोध्या आ गये। मार्ग में उनको पूर्व दिशा की ओर चलते समय सुदामा नदी, शुतुद्र नदी (सतलज), सरस्वती तथा गंगा का संगम, मत्स्य देश मारुण्ड देश, कुलिंगा नदी, यमुना, भगीरथी, चित्ररथ वन गोमती नदी, कलिंगनगर आदि आदि स्थान, नदी एवं पर्वत पार करने पड़े। पुनः सात दिन के बाद अयोध्या नगरी को पधारे।

चलते समय मार्ग बदल दिया और हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में चित्ररथ आदि वनों में भी गये थे तभी सैनिक वाहुल्यवशात् भ्रमण करने के कारण विलम्ब हो गया, इसीलिए ७ दिन लग गये।

आधुनिक स्थान निर्णय

यातायात के मार्ग द्वारा पता चलता है कि अयोध्या से चलकर गोमती, गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतद्रु (सतलज) और विपाशा को पार करना पड़ा। विपाशा के बाद किसी नदी को नहीं पार किया—

प्रमाण:- ययुर्मध्येन वाल्हीकं सुदामानं च पर्वतम् ।।
विष्णो पदं प्रेक्षमाणं विपाशां चापिशाल्मलीम् ।
गिरिव्रजं पुर वर शीघ्रमासे दुरन्जसा ।।
(वा० रा० अयो० अ० ६८ श्लोक १८ से २०)

अर्थात विपाशा (व्यास नदी) को पार करके गिरिव्रज नामक महानगरी को प्राप्त किया और जब चले तो शुतुद्रु (सतलज नदी) को पार किया—

शुतुद्रुमतरच्छीघ्रं नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः । अयो० अ० ७१-२

इन श्लोकों से यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाता है कि केकय देश वाल्हीक देश के उत्तर पश्चिम में सतलज नदी और व्यास नदी के पार में स्थित था। व्यास नदी के पश्चात् इरावती (रावी नदी) को पार नहीं करना पड़ा। अतः वह देश विपाशा और इरावती नदी के मध्य में वाल्हीक देश के उत्तर पश्चिम में स्थित है, यह निश्चित हो गया है।

यद्यपि यातायात में पड़ने वाले नगर, पर्वत, नदी, वन आदि के नाम इस समय बिलकुल बदल गये हैं, लाखों वर्षों का समय व्यतीत हो गया फिर भी गंगा, यमुना, सरस्वती, गोमती, हस्तिनापुर, सतलज, व्यास आदि के नामों से स्थान का पूर्ण निश्चय हो गया। यद्यपि इस समय पंचनद देश की झेलम, चुनाव, रावी, व्यास और सतलज नदियों के नाम अब वे पुराने नहीं रहे हैं फिर भी परम्परा से यह बात चली आ रही है कि प्राचीन काल में झेलम को वितस्ता, चुनाव को चन्द्र भागा, रावी को इरावती, व्यास को विपाशा या विपाट और सतलज को शुतुद्रु या शतद्रु कहा जाता था। ऋग्वेद के —

इम मे गङ्गे यमुने सरस्वतिशुतुद्रुस्तोमं सचतापरुष्ण्या ।।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।।

इस मंत्र में झेलम आदि नदियों के नाम और भी विचित्र प्रकार के आये हैं। केवल शुतुद्रु और वितस्ता नाम कुछ कम प्राचीन हैं। अस्तु नाम तो बदलते ही रहते हैं। परन्तु शुतुद्रु और विपाशा तो सतलज और व्यास के नाम हैं ही इसमें कोई भिन्न मत नहीं।

स्पष्ट निर्णय यह है कि जहां पर इस समय हिमांचल देश के कांगड़ा, धर्मशाला, ज्वालामुखी, कुल्लू, चम्बा, पठानकोट, शिमला, मुंडी, जोगेन्द्रनगर, बैजनाथ आदि स्थान हैं वहीं पर केकय देश की राजधानी गिरिव्रज नामक नगर रहा होगा। यह स्थान शीत प्रदेश तथा अतीव पर्वतीय दृश्यों से मनोहर भी है। यहां के नर-नारी सुन्दर भी होते हैं, इसके उत्तर में जम्बू काश्मीर हैं।

मिश्र बन्धु, प्रोफेसर दयाल, डा० स्मिथ, डा० ईश्वरी प्रसाद, प्रोफेसर रामदेव गुरुकुल कांगड़ी, भाई परमानन्द जी लाहौर आदिकों ने कुरु पांचाल, बाल्हीक, कम्बोज, केकय आदि देशों का भारत के मानचित्र में जो स्थान दिया है उसके अनुसार भी सतलज तथा व्यास के मध्यवर्ती देश का नाम बाल्हीक और व्यास तथा रावी नदी के मध्यवर्ती देश का नाम केकय देश बताया है।

केकय देश की महत्ता

यह देश सदाचार निष्ठ था। महाराज अश्वपति राजकन्या महाविदुषी श्री कैकेयी माता ने श्री भरत लाल को जन्म दिया था और कैकेयी ने जो भी कुछ किया उसका भी परम उद्देश्य यही था कि भगवान राम बन में जाकर लंकेश रावण के अत्याचार को मिटा दें और फिर सारा आयोजन हमारे पिता अश्वपति के केकय देश के समान "नमेस्तेनो जनपदे" इस वेद वाणी के अनुसार ब्रह्मलोक के सदृश बन जाये।
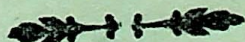
"आशा दीप जला लें"

कु० नवलता

आओ गौरवमय अतीत की झांकी आज सजा लें।
बुझती हुई निराशाओं में आशा दीप जला लें।।
मानव ही मानव का भक्षक आज बना जाता है।
कोटि-कोटि शोषण के मद से घृणित तोष पाता है।।
वर्तमान की निर्ममता की आओ चिता जला लें।
महा प्रलय करने वाले शंकर स्वरूप हम ही हैं।।
और सृजन करके भविष्य के पोषक भी हम ही हैं।
उस भावी सौन्दर्य सृजन की आज प्रतिज्ञा कर लें।।
गर्व हमें है, विश्व पूज्य भारत में जन्म लिया है।
महा मानवों की पद-रज का मधुर पराग पिया है।।
आज भ्रमर बन सूर्यवंश के तरु पर हम इठला लें।
वही पुष्प जिसने मधु देकर परम तेज था पाया।।
जग उपवन को आदर्शों का शुभ सन्देश सुनाया।
आओ उसकी मृदु सौरभ की गौरव गाथा गालें।।
अपनी पावन पुण्य धरा पर फिर से स्वर्ग बसा लें।
बुझती हुई निराशाओं में आशा दीप जला लें।।

* श्री भरताब्धि मन्थन *

मानस तत्वान्वेषी पं० श्री रामकुमार दास जी रामायणी मणि पर्वत श्री अयोध्या जी

महामहिमा जल सों परिपूर्ण पयोधि अपार भरत रहे।
अमृत प्रेम अनूप भरे तिहि काढ़न श्री रघुबीर चहे ॥
विरहाचल मन्दर मेलि मथे सुर सन्त उछाहि सुधासु लहे।
हिय श्री तुलसी समुझाइ दिये तब रूपक सांग 'कुमार' कहे ॥

कवि संसार का नियम सा है कि उनकी दृष्टि में जो वस्तु अपार अगाध ज्ञात होती है उसे समुद्र कह देते हैं। किसी भी सुकवि प्रथा की अवहेलना गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने नहीं की है तब भला इसकी ही उपेक्षा कैसे कर जाते ? परन्तु उनकी अपनी विशेषता है कि हर एक बात को किसी विशेष रूप में ही यत्र-तत्र कह देते हैं। आपने अनेक वस्तुओं को मौके-मौके पर समुद्र कहा है जिनमें कई स्थलों पर विभिन्न वस्तुओं किंवा व्यक्तियों को समुद्र का रूपक देकर उसमें मन्थन के द्वारा अनेक रत्नों का प्राकट्य दिखलाया है जैसे श्रीराम रूप को अनेकों बार समुद्र कहा। इस रामरूप सिन्धु की रत्न प्राप्ति मन्थन क्रिया आदि का साँग रूप 'श्री रामाब्धि मन्थन' और 'ब्रह्मपयोनिधि का सांग रूपक वेदाब्धि मन्थन' शीर्षक लेख में देखा जायेगा। यहाँ पर श्री भरत विशेषाँक में "श्री भरताब्धि मन्थन" को सांग रूपक से देखता हूं। सांग रूपक तब होता है जब समुद्र, जल, कच्छप, मंदर, बासुकी, औषधियाँ एवं देवता तथा दैत्य सभी होते हैं तब कम से कम चतुर्दश रत्न की प्राप्ति का रूपक ठीक पड़ता है।

प्रेम अमिय मन्दर बिरह भरत पयोधि गम्भीर।
मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपा सिन्धु रघुबीर ॥

यहां भरत जी को समुद्र कहा, पर जल नहीं बताया कि भरत—समुद्र में भरा जल क्या है। समुद्र जल नहीं है अपितु जल के रहने का आश्रय स्थान है। समुद्र मन्थन के सहकारी साधन कच्छप, सर्प, दैत्य, औषधियाँ आदि एवं मन्थन फल सुधातिरिक्त त्रयोदश रत्नों की चर्चा इस स्थल पर नहीं है। परन्तु

इसके बिना रूपक अपूर्ण रह जाता है और रूपक की सारी सामग्री श्रीरामचरित मानस में ही बिखरी पड़ी है। वही यहाँ एकत्र कर दी जा रही है।

समुद्र—श्री भरत जी = भरत पयोधि गम्भीर।

जल—श्री भरत जी की अगाध महिमा। —

भरत महा महिमा जल राशी।

साधारणासाधारण भेद से महिमा दो तरह की होती है। श्री भरत जी की दोनों महिमा महान हैं। साधारण महिमा जल तुल्य है और असाधारण महिमा लक्ष्मीवत् है जो आगे वर्णित है।

मन्दराचल—श्रीराम विरह "मन्दर विरह"

औषधियाँ—श्री भरत जी में समस्त वेद विहित धर्मों का समावेश है—

जो न होत जग जनम भरत को। सकल धर्म धुर धरणि धरत को॥

कच्छप—कच्छप के ऊपर-नीचे, पेट-पीठ दोनों कठोर होते हैं। कच्छप ही मन्दर धारण का कारण हुआ था, वैसे ही दोनों वरदान श्री भरत जी के लिये विरह दुख के कारण हुये थे अतः दोनों वरदान कठोर होने से कच्छप हुये—

"द्वौ वर कूल कठिन हठ धारा।"

देवता—कल्याण गुण गण विशिष्ट—

"कृपा सिन्धु रघुबीर।"

दैत्य—तामसी मायासमन्विता मन्थरा और श्री कैकेयी जी दैत्यों में जैसे महातामसी हुंड, नमुचि आदि थे और महाभागवत बलि भी थे, वैसे यह परम तामसी मन्थरा और महाभागवत जननी श्री कैकेयी जी थीं।

बासुकी—तर्क = साँप की पूंछ शीतल और मुख विषाक्त अतः उष्णत्वमय होता है। इसी तरह तर्क का आरम्भ जोश-खरोश लेकर होने से उष्ण और अन्तिम सुविचार सुख शान्तिप्रद शीतल—

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥ (मनु)

वासुकी से निकले विष में दैत्य जलने लगे थे, पर पूंछ की तरफ होने से देवता शीतल रह गये। श्रीराम जी शीतल रहे, पर कैकेयी जलती रहीं—

आगे जरत दीख रिसि भारी।

इस तरह मन्थन सामग्री का दर्शन करके समुद्र मन्थन से निकले रत्नों को देखना चाहिये वे चतुर्दश रत्न जो समुद्र से निकले थे—

बिष मणि रम्भा बाजि श्री बारुणि बृक्ष बिचार।
शंख धेनु धनु चन्द्र गज धेन्वरु अमिय 'कुमार'।।

[वैद्यों द्वारा संशोधित महाविष भी जीवनप्रद महौषधि हो जाता है इनसे विष को भी रत्न संज्ञा देकर गणना की गई है।]

१ विष—तर्कपूर्ण शपथ: विष भक्षण हानिप्रद, शपथ हानिप्रद—
साँचिहु शपथ अघाइ अकाजू।

विष से हानि उठाने वाले दैत्यों के समान मन्थरा और कैकेयी जी—

मन्थरा— हूमचो कूबर फूट कपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू।।

श्री कैकेयी जी—"नाहित जरिहि जन्म भरि छाती।"
"लीन्ह विषबदन अपयश आपू।"
"कुटिल रानि पछितानि अघाई।"

२ मणि :—श्री भरत जी का व्यक्तित्व—
कसे कनक मणि पारिख पाये। पुरुष परखिअहि समय सुहाये।।

३ रम्भा-चिन्ता :-
नींद पुरातन गेहिनी सोबति सब निशि साथ।
भार बधू चिन्ता लखत उझकि झांकि फिरि जाति।।

सुना जाता है कि स्त्री (खासकर वेश्या अन्या स्त्री) समस्त निशीथ जगा रखती हैं— सोचत भरतहि रैनि बिहानी।

४ बाजी घोड़ा—मन मग दशा :—बाजी की उत्तमता चंचलता में है—
सुभग सकल सुठि चंचल करनी।
चंचल चपल चिहूंकना बहुभोजन बहु रोष।
एते तुरगै गुन करै एते तिरियै दोष।।

चित्रकूट जाते समय श्री भरत जी की मन मग दशा बड़ी चंचल थी—
भरत दशा तेहि औसर कैसी। जल प्रबाह जल अलिगति जैसी।।

५ श्री—श्री भरत जी के स्वभाव की महा महिमा। समुद्र से निकलने पर सिन्धुजा श्री जी को सभी चाहते थे पर श्री जी की जयमाला एकमात्र श्री हरि को ही मिली अन्य किसी को नहीं। इसी तरह भरत जी का स्वभाव एवं उनकी महामहिमा सभी जानना चाहते हैं, परन्तु—
भरत सुभाव न सुगम निगमहूं।

और श्रीराम जी पूर्ण रूप से जानते हैं—

"तात तुम्हहि मैं जानउँ नीके ।"
भरत महा महिमा सुनु रानी । जानहि राम·····।"

६ वारुणी :—माता कैकेयी को कटु कहना—

जारचौं जाइ जननि कहि काकू । अथवा

करत मनोरथ जस जिय जाके । जाहिं सनेह सुरा सब छाके ।।
शिथिल अंग पग मग डग डोलहिं । विहवल बचन प्रेम वश बोलहिं ।।

बारुणी की नशा में अंट-संट बोला ही जाता है ।

७ वृक्ष :—कल्प वृक्ष—श्री भरत जी का वचन कल्प वृक्ष वत् सबको प्रिय लगता है ।

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे ।

८ शंख—निर्मल घोष, यथा गीता—

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ।।

इसी तरह श्री भरत जी का निर्णय—निर्मल घोष सुनकर—

भा सबके मन मोद न थोरा । जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ।।
"भरत बचन सब कहं प्रिय लागे ।।"

९ कामधेनु—श्री भरत जी का आचरण । धेनु से निकला दूध, दही, घी, मल (गोबर मूत्रादि सभी कुछ परम पवित्र होने से जगत में धर्म सार रूप है अर्थात सभी धर्म कार्यों में गृहीत है । इसी तरह—

परम पुनीत भरत आचरनू ।
समुझब कहब करब तुम जोई । धर्म सार जग होइहि सोई ।।

१० धनु— बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि ।
भरत समुद्र से निकला धनुष सदैव अमोघ अस्त्र छोड़ता है ।

११ चन्द्रमा—श्री भरत जी का स्वभाव अथवा यश—
स्वभाव— भरत सुभाव सु शीतलताई । सदा एकरस बरनि न जाई ।
शरदातप निशि शशि अपहरई ।
यश— नव विधु विमल तात यश तोरा ।।

१२ गज ऐरावत—श्री भरत जी का प्रश्न । ऐरावत को इन्द्र के अतिरिक्त कोई नहीं सम्भाल सकता, नहीं पकड़ सकता । ऐसे श्री भरत जी का प्रश्न

एकमात्र श्रीराम जी ही समझ सके—पकड़ सके अन्य कोई नहीं।

सकल बिलोकत भरत मुख बनै न उत्तर देत।

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ असि अदभुत बानी॥

१३ वैद्य—धन्वन्तरि अवतार—प्राकृत समुद्र मन्थन से भगवान का एक लघु अंशावतार प्रगट हुआ अमृत कलश लिये। परम दिव्य श्री भरताब्धि मन्थन से दश महा अवतारों में से भगवान का एक महान अवतार वराह हुआ—

शोक कनक लोचन मति छोनी।
हरी विमल गुन गन जग जोनी॥
भरत विवेक बराहु विशाला॥

१४ अमृत - प्रेम, प्रेमामृत का स्वाद कहा नहीं जा सकता, अकथनीय है। इसी तरह—

"भरत प्रेम तिहि समय जस तस कहि सकहिं न शेष॥"
"राम प्रेम भाजन भरत, बड़ो न यह करतूति॥"
"राम प्रेममय अमिय अघाहू। कीन्ह्यो सुलभ सुखद बसुधाहू॥"

उस अमृत को देवताओं में बाँटने के लिये श्री हरि ने मोहिनी रूप लिया था। इस अमृत को सज्जनों में बांटने के लिये श्री हरि ने श्री गोस्वामी जी की महिमा को प्रेरित करके मानस द्वारा जगत को बाँटा —

तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे॥

और आज भी बंटता ही रहता है। प्रेमामृत की मधुरिमा प्राप्त करने के बाद फिर समस्त मधुरिमायें फीकी लगने लगती हैं।—

जौं मोंहि राम लागते मीठे।
तौ नव रस षट रस अनरस रस
ह्वै जाते सब सीठे॥ (विनय पत्रिका)

तुलसी जौ लौं जगत की मुधा माधुरी मीठ।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भक्ति सुठि सीठ॥ (दोहावली)

अतएव अन्य मधुरिमाओं से स्वाभाविक ही घृणा हो जाती है। श्री भरत प्रेमामृत प्राप्त कर लेने के बाद स्वभावतः जागतिक भवप्रद मुधा माधुरी से अवश्य ही विरक्ति हो जाती है। यही श्री भरत-प्रेमामृत की मधुरिमा है—

भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस विरति॥

यह सांग रूपक हुआ।
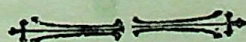
चित्रकूट वर्णन

(श्री शिव शंकर श्रीवास्तव)

चित्रकूट रमणीक सुवर शुचि कानन पावन ।
नारी नर अरु बाल वृद्ध सबको मन-भावन ॥
सिया सहित श्री राम लखन जहं रहे लुभावन ।
हम सारिखे अजान आजु तेहि ढिग को धावन ॥

सुनी रही हम ख्याति तासु अनुपम अति भारी ।
दर्शन मज्जन रूप राशि छवि लीला प्यारी ॥
प्रकृति जहाँ कल्लोल करत निज रूप निहारी ।
हमहूं ताहि बिलोकि आजु निज गेह बिसारी ॥

गेह बिसारयो बीर राम नहि सिया बिसारी ।
तिया नेह आदर्श राम जग दियो पसारी ॥
चक्रवर्ति के पुत्र कठिन वन भूमि पहारी ।
संग चले प्रिय प्रणय ठाउं सोइ आजु निहारी ॥

क्रूर काल कुसमय विशाल मन में निहाल ह्वै धायो ।
द्वै जीवट तापस मराल का जोर तोर बगरायो ॥
सीय दसानन हरयो बज्र जनु परयो राम बिलखायो ।
विरही वन जहं भ्रम्यो राम तहं हमहुं आजु पगु धारयो ॥

पर्वत श्रेणी ललित सुपेती सरितामृत शुचि धारा ।
झरना कल कल करहिं हरहिं दुख पथिक आव बेचारा ॥
विहरनि वन्य कलोल विहंगम जंगम थावर सारा ।
करहिं राम गुन गान जहां तहं हमहुं आजु पगु धारा ॥

आदर्श भरत

(कथा वाचस्पति पं० स्वामी दयाल शुक्ल व्यास)

भरत चरण-रति राम से करी है 'व्यास'।
आश कुछ नहीं राज सुख परिवार की ॥
गुरु-पितु-मातु स्वर्ग-सदन से शान्ति नहीं।
प्रभु-प्रेम अतुल न बात है विचार की ॥
तारन - तरन रोम-रोम में रमे हैं।
श्वांस-श्वांस में लगी है सुधि धर्मधुर धार की ॥
बीच मंझधार से बचायो रवि वंश लाज।
डूब जो रही थी बैठि धर्म-नाव पार की ॥

वाल्मीकि रामायण में 'भरत'

श्रीमती विद्या मिश्र, अध्यक्षा हिन्दी विभाग, विद्यान्त कालेज, लखनऊ

बाल्मीकि रामायण के सभी पात्रों में भरत का चरित्र सर्वाङ्गपूर्ण सर्वाङ्ग सुन्दर चित्रित किया गया है। अनेक संघर्षमयी परिस्थितियों की कसौटी पर भरत अपने अदम्य साहस, अटूट धैर्य एवं अविकम्पित शक्ति द्वारा पूर्ण रूपेण खरे उतरते हैं। प्रलोभनों का विशाल जाल चतुर्दिक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त दशरथ - मरण, राम - बनवास, मातृ-परित्याग और आत्मिक ग्लानि; जनसाधारण की उनके प्रति आशंकित दृष्टि इत्यादि असंख्य एवं विशाल गर्जन करती हुई ऊर्मियों के आर्वत में भी भरत का धैर्य भक्ति युक्त एवं कर्त्तव्य निष्ठ रूप शैल की भाँति अडिग एवं अचल है।

महर्षि बालमीकि ने सर्व प्रथम अपने विशाल आदि काव्य में भरत का प्रथम परिचय उनका चित्राङ्कन करते हुए दिया।

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः (बा० रा०१|१८/७२)
(पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में निर्मल बुद्धि भरत का जन्म हुआ।)

कर्त्तव्यनिष्ठ भरत के चित्राङ्कन के प्रमुख स्थल हैं कैकय देश के प्रत्यावर्त्तन पर भरत की दशा, चित्रकूट प्रसंग, अवध में निवास की स्थिति तथा राम के अयोध्या लौटने पर उनका अप्रतिम रूप।

उपर्युक्त सभी प्रसंगों में भरत का चरित्र अपने अलौकिक तेज एवं गाम्भीर्य से अनुप्राणित है। धर्मनिष्ठा एवं कर्त्तव्य परायणता दोनों का स्वर्ण-सुगंधित संयोग सर्वत्र उपलब्ध है।

दशरथ-मरण के पश्चात वशिष्ठ ने भरत को बुलाने के लिए दूत भेजे। उधर पूर्व ही अनिष्ट की आशंका से भरत स्वतः आशंकित एवं आतंकित हो उन्हें नाना प्रकार के अनिष्टकारी दुःस्वप्न दिखाई देने लगे जो कि उनकी निष्कपटता के प्रमाण सिद्ध होते हैं। भरत ने दूतों से सर्व प्रथम पिता दशरथ, राम तथा लक्ष्मण की कुशल जिज्ञासा की।

कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम ।
कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ।। (वा० रा० २/७०/७) ।।

मातुल गृह से लौटकर भरत ने अयोध्या में शून्यता का अनुभव किया । शनैः शनैः विपरीत रूप-रेखाओं से प्रकम्पित भरत का धैर्य-शैल कैकेयी भवन में पैर रखते ही दुःसंवाद के वज्राघात से विदीर्ण ही नहीं चूर-चूर हो गया । कैकेयी की कुबुद्धिपूर्ण कुयाचना के परिणामस्वरूप राम का बनगमन एवं महाराजा दशरथ का स्वर्गवास इस दुःसंवाद के द्विजिह्व सर्प ने भरत को मर्माहत कर डाला । इससे भी अधिक दारुण वेदना हुई यह जान कर कि समस्त अनर्थों का हेतु उन्हीं को बनाया गया ।

त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवविधं कृतम् । (वा०रा० २/७२/२८)
(तुम्हारे ही कारण मैंने यह सब इस प्रकार किया ।)

इस तीव्राघात से उनका हृदय क्षोभ से अभिभूत होकर वे अपनी ही माँ कैकेयी के प्रति असंख्य कटूक्ति-शरों का प्रहार करने लगे । वे उनके प्रति कुलयासनि तथा कालरात्रि आदि कह कर अपने ग्लानिमय उद्‌गार व्यक्त करने लगे । इस प्रसंग में वाल्मीकि ने उनका चित्रण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक, सजीव एवं स्वाभाविक रूप में किया है ।

वे तुलसी के भरत की भाँति केवल अन्दर ही अन्दर ग्लानिमय अग्नि में सुलगते ही नहीं रहते अपितु वे राजनीति,[1] कुलनीति[2] आदि तर्कों द्वारा कैकेयी के प्रति शाप[3] द्वारा तिरस्कार प्रदर्शित करते हुए अपना कटु विरोध दर्शाते हैं । इतना ही नहीं वे दण्ड निर्धारण करने में भी संकोच नहीं करते —

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दंडकान् ।
रज्जुं बध्वाऽथवा कंठे नहि तेऽन्यत्परायणम् ।।

मातृ-मर्यादा की तनिक भी चिन्ता उनके वास्तविक उद्‌गारों में बाधक नहीं बनती । वे अपनी माता के वध तक का विचार कर उठते हैं ।

(१) सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते (वा० रा० २।७३।२२)
(२) अस्मिन् कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते (वा० रा० २।७३।२०)
(३) कैकेयि नरकं गच्छ मा च तात सलोकताम् (वा० रा० २।७४।४)

'हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ।।

वशिष्ठादि प्रमुख राज्य-संचालक तथा मुख्य मन्त्रिमण्डल के समक्ष भरत का नीतिज्ञ रूप अत्यधिक सराहनीय है जिसमें वे कर्त्तव्य पथ की गरिमा से सतत् गौरवान्वित रहते हैं ।

वे राज-सभा के प्रस्ताव का तीव्र विरोध इन शब्दों में करते हैं :—

'ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः ।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या में भरत का राज सभा के साथ विचार-विमर्श का दो वार उल्लेख किया गया है । दोनों ही बार भरत ने अपने को उत्तराधिकारी बनाने का विरोध किया ।

कौशल्या एवं अवधपुर वासियों के सशंकित हृदयों को शान्त कर भरत अपने पुरिजन-परिजन सहित वन वीथि की ओर अग्रसर हुए । मार्ग में राम के सखा गुह ने उन्हें आड़े हाथों से लिया उसी अशंका की प्रेरणा से उत्पीड़ित होकर। गगा तीर पर भरत को ससैन्य आया हुआ देख वह मन में कटु आशंकाएं धारण करने लगा । केवल मानसिक ही नहीं भरत के सम्मुख अपनी आशंकाए व्यक्त भी कर दीं ।

'अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ।
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
इमं ते महती सेना शंका जनयतीव मे ।

(वा० रा० २।८५।६७)

परन्तु भरत के ग्लानि-पीड़ित विशुद्ध हृदय की वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह वन्य प्राणी भी भरत की भावमयता से अभिभूत होकर भूरि-भूरि सराहना कर उठा ।

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।
अयत्नादागतं राज्यं त्यक्तुमिहैच्छसि ।।

(वा० रा० २।८५।१८)

केवल इतना ही नहीं वही रामसखा राम-भ्राता भरत को उज्ज्वल अमर यश-प्राप्ति का वरदान भी दे देता है।

शाश्वती खलु ते कीर्त्तिर्लोका ननु चरिष्यति ।।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं राम प्रत्यानयितुमिच्छसि ।।
(वा० रा० २।८५।१३)

भरत निषाद को 'मम गुरोः सखे' कहकर संबोधन करते हैं तथा एक साधारण निषाद के प्रति 'श्लक्ष्णया वाचा' का प्रयोग करना भरत की शिष्टता, व्यवहार-कुशलता, नम्रता एवं मधुरता का परिचायक है।

इसके पश्चात् वे पुण्यतीर्थ प्रयाग की ओर पदार्पण करते हैं। भरत-भरद्वाज संवाद में ऋषि भी मानवोचित आशंकाओं को अभिव्यक्त कर भरत की परीक्षा लेते हैं तथा भरत उनके शंकामीलित प्रश्नों का समाधान कर परीक्षाग्नि में तप कर अपनी दिव्याभा आलोकित करते हैं। इस प्रसंग में भरद्वाज के व्यंग-वाणों से विद्ध मर्माहत भरत का चित्रण अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं मनोवैज्ञानिक रूप में हुआ है। एक सर्वज्ञ ऋषि भी भरत की परीक्षा यथार्थ रीति से लेते हैं। कसौटी पर खरे उतरने का प्रमाण भी महर्षि भरद्वाज देते हैं। भरत को निरपराध प्रमाणित कर स्वयं अपनी आशंकाओं का समाधान कर वे भरत के सद्भावों की सराहना करते हुए उनकी नैतिक उच्चता का प्रमाणपत्र इस प्रकार देते हैं—

'त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ।।
जाने चैतन्मनस्थं ते दृढ़ीकरणमस्त्विति ।
अपृच्छ त्वां तवात्यर्थं कीर्त्ति समभिवर्धयन् ।।
(वा० रा० २।९०।२०,२१

हे पुरुषसिंह ! रघुवंश से उत्पन्न आपको यह उचित ही है। गुरु सेवा, शत्रुदमन तथा साधुओं के अनुयायी होना आदि गुण तुममें प्रस्तुत हैं। मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में यही है पर उसे पुष्ट करने के लिए और तुम्हारी कीर्त्ति बढ़ाने के लिए मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था।

मौलिक संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व की कसौटी पर भरत का चरित्र महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। धर्मनिष्ठ कर्त्तव्य परायण भरत का चरित्र अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व

की कसौटी पर सर्वत्र खरा उतरा है जिसका उत्तम निदर्शन चित्रकूट प्रसंग में मिलता है। इस प्रसंग की सम्यक् व्याख्या एवं विश्लेषण करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है मानों रामायण के भरत में समस्त नैतिक सुमनों के मकरन्द का संचयन कर दिया गया है। भरत के रूप में प्रेम बिन्दु में अगाधसिन्धु का दर्शन हमें चित्रकूट सभा में होता है। जहां अटल एवं अचल बुद्धि युक्त महान् व्यक्ति भी उस सिन्धु की सरस स्निग्ध वचन-वीचियों में निमग्न होने में ही अपना परम कल्याण मानकर उसी में आत्मविभोर हो उठते हैं।

इस प्रसंग के अन्तर्गत भरत का तेजस्वी एवं मधुर रूप दृष्टव्य है :-

भरत को ससैन्य आता हुआ देखकर लक्ष्मण के हृदय में नाना आशंकाओं एवं क्षोभ का उद्भव दिखाया गया है जिनका समाधान राम स्वयं करते हैं।[१]

इधर राम के आश्रम का मार्गान्वेषण करते हुए अपनी अटूट लगन में लीन भरत की भावदशा अत्यन्त हृदयद्रावक है। वे अत्यन्त आकुल एवं आतुर होकर 'न मे शान्तिर्भविष्यति'[२] की पुकार की झड़ी लगा देते हैं।

अपना अभीष्ट राम-दर्शन सम्मुख उपस्थित देख अपने को अत्यन्त निर्लज्ज मानकर ग्लानि के कारण चेतना शून्य हो गये। बाल्मीकि रामायण का यह राम-भरत-मिलन अत्यन्त मार्मिक, प्रभावोत्पादक एवं मनोवैज्ञानिक है।

तदनंतर चित्रकूट सभा में भरत की विवेकशीलता का स्पष्ट निदर्शन है। इसमें भरत का बुद्धि पक्ष प्रबल होकर तार्किक हो उठा।

जब राम भरत से चित्रकूटागमन का कारण पूछते हैं तब वे तर्क उपस्थित करते हुए निम्नाङ्कित तथ्यों का अवलोकन कराते हैं।

(१) 'इक्ष्वाकुवंश की परम्परानुसार राज्य के आधिकारी आप हैं, मैं नहीं।" (वा० रा० २।१०२।११)

(२) यह सर्वसम्मति है कि आप राज्य पुनः लौट कर उसका उत्तरदायित्व एवं कार्यभार स्वयं ग्रहण करें। (वा० रा० २/१०२/१३)

---

(१) (वा० रा० २।९८।३ से १८ तक)
(२) (वा० रा० २।९९। ६ से १० तक

(३) मैं अपनी माता की इच्छा का घोर विरोध करता हुआ यह नहीं चाहता कि किसी भी प्रकार उसकी कुमन्त्रणाओं एवं कुकार्यों को सफल होते देखूं।
(वा० रा०२/१०२/५,९)

परन्तु राम इन तीनों तर्कों का खण्डन करते हैं।
कैकेयी की निंदा का विरोध करते हुए माता, पिता की समन्वित आज्ञा पर आरूढ़ होने को ही गौरवशाली मार्ग कहते हैं (वा० रा०२/१०२/२१,२२)

रामायण के भरत बारम्बार धर्मनिष्ठता की प्रेरणा से राम से राज्य शासनारूढ़ होने के लिए आग्रह करते हैं। नैतिकता, धर्मशीलता एवं विवेकशीलता की दृष्टि से वे अपने पिता में भी दोषदर्शन करते हैं। इतना ही नहीं वे राम को धर्मशीलता पालनहेतु कर्मठता एवं क्षात्र धर्म की ओर उन्मुख एवं उद्यत होने की प्रेरणा देते हैं। वे पिता के वरदान को अविचार कह राम को पुत्र का कर्तव्य समझाते हुए क्षत्रियों के प्रथम कर्तव्य 'प्रजापालन' की ओर प्रेरित करते हैं।

इन कर्त्तव्यों की ओर विशेष उन्मुखता न दिखाते हुए राम अकाट्य तर्कों की ओर अग्रसर होते हैं कि उनके पिता द्विगुणित रूप से वचनवद्ध हो चुके थे।

(१) कैकेय नरेश के प्रति
(२) अयोध्यावासियों के प्रति

अतः राम असमर्थता दिखाते हैं भरत का आग्रह स्वीकार करने में। राम की इस दृढ़ता को देख भरत हताश हो गये, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे, एक मात्र हठधर्मी साधन उनकी दृष्टि में शेष रह गया 'प्रायोपवेशन'।

स्वयं हताश होकर वे राम को समझाने के लिए अयोध्या वासियों से प्रार्थना करते हैं परन्तु वे राम की पितृ भक्ति देखकर अपनी असर्थता प्रकट करते हैं।

भरत सभी ओर से उदासीन होकर एक मात्र त्यागशील रूप को ही अपनाने में अपनी शान्ति मान लेते हैं तथा वे निश्चय करते हैं न तो मैं पिता का राज्य माँगता हूं, 'न माता को ही कुछ सिखाऊँगा' और न श्रीराम को ही वन से लौटाता हूं। यदि उन्हें अवश्य पिता जी के वचनों का पालन कर यहीं रहना है तो मैं भी चौदह वर्ष तक वन में रहूंगा (वा० रा० २/११३/२४-२६)

इस प्रकार वादविवाद में तर्कशीलता के स्थान पर गंभीरता आ गयी। स्वयं राम भी इस दृढ संकल्प को सुन आश्चर्यचकित हो कर्त्तव्य की प्रेरणा से आशं-

कित हो उठे तथा भरत द्रवीभूत होकर भरत की विनीत प्रार्थना की स्वीकृति किंचित संशोधन के साथ दे दी कि वन से लौटकर अपने धर्मशील भाई के साथ राज्य का अधिपति बनूंगा ।

भरत राम से अपनी दशा का निवेदन करते हुए अपना राज्य किसी अन्य को सौंपने का अनुरोध करते हैं । इस प्रार्थना के साथ ही वे अपने भ्राता के चरणों पर गिर पड़े । उनके विनीत विह्वल रूप के प्रति राम करुणार्द्र हो उठे और उनकी सराहना करने लगे साथ ही कर्त्तव्य का निर्देश भी करने लगे ।

राम के अनुरोध को गुरुजन सेवी भरत फिर न टाल सके । इस प्रकार स्वतःकरणीय कार्यों का उत्तरदायित्व भाई को चरण पादुकाओं के मिस सौंप दिया। इस प्रकार रामायण में चित्रकूट-सभा का अन्त अत्यन्त नाटकीय ढंग से हुआ।

अयोध्या लौट कर, नगर की सुव्यवस्था का प्रबंध कर पादुकाओं को सिंहासनस्थ किया तथा स्वयं नन्दिग्राम में निवास किया। भरत के इस कर्मशील रूप पर वशिष्ठ अपने साधुवाद द्वारा भरत को धर्मध्वज की उपाधि से विभूषित करते हैं।

इस प्रकार भरत एक संन्यासी-शासक की भांति प्रभु प्रतीक पाँवरी से अनुशासन लेकर राज्य का शासन कर अपनी कर्त्तव्य गरिमा तथा नन्दिग्राम रहनि के भक्त रूप द्वारा अपनी भाव-गरिमा दोनों के समन्वित रूप का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार सेवा के असिधारा-व्रत का आपने पूर्णरूपेण पालन किया।

राम के अयोध्या-गमन पर भरत अपनी थाती राज्य का निर्वाह व निक्षेप सम्यक्रूपेण कर देते हैं।

वाल्मीकि रामायण के भरत की अपेक्षा तुलसी के भरत में अनेक प्रसंगों में साम्य के साथ-साथ स्पस्ट अन्तर यह है कि मानस के भरत में भक्ति-भाव सुमनों का मकरन्द आद्योपान्त उपलब्ध है। बाल्मीकि के भरत का रूप कर्त्तव्य-निष्ठ अधिक है जबकि तुलसी के भरत राम प्रेम की प्रतिमूर्त्ति विशेष हैं जो अनन्य निष्ठा एवं सेवा भावना से प्राणान्वित है । भक्त मानस-प्रणेता गोस्वामी जी ने भरत का नितान्त मौलिक एवं भावग्राही आर्त्त भक्त का रूप चित्रित किया है। वहां तो सेवक-सेव्य भाव के उपासक भरत की भक्ति-सरिता राम प्रेम के सिन्धु की ओर अवाध, द्रुत गति से प्रभावित हुई है।

मानस में भरद्वाज एवं निशादराज से भरत का मिलन आध्यात्मिक मंच पर हुआ है। दैन्य-प्रतिमूर्ति भरत का रसाप्लावित, स्निग्ध रूप का चित्रण हृदयस्पर्शी है। 'कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग'' (मा० २।८०३) निष्काम कर्मयोगी भरत के निस्पृह रूप की छटा इस मनोकामना में दर्शनीय है।

अरथ न धरम न कामरुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति रामपद यह बरदानु न आन।।

मानस में शुद्ध भक्त रूप का सफल चित्राङ्कन है तो बाल्मीकि रामायण में भरत का सेवक रूप चित्रित है। प्रेम की वेदी पर आपने अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पित कर दिया, पर प्रतिकार में किसी वस्तु की कामना नहीं की। यही निष्काम धर्म है, निःस्वार्थ प्रेम है। ऐसे ही भक्त अनंत दिव्यानद-सागर में आनंद-रूप होकर सदा निमग्न रहते हैं।

होत न भूतल भाउ भरत को।
अचर सचर चर अचर करत को।।

गुप्त-देव

(श्री भरत से सम्बन्धित एक घटना)

कविरत्न 'चन्द्रमणि'

कोहबर में थे श्रीराम सिया के संग में,
सखियों की टोली वहीं आ गयी रंग में.
वे करने लगीं विनोद राम रघुवर से.
जिनको सुनकर सुकृती नर नारी हरषे।

ले गयीं सिया-प्यारे को एक भवन में,
वे सब विनोदमय हर्षित अपने मन में,
एक सजा हुआ सिंहासन दिव्य निराला,
रेशमी वस्त्र पर पड़ी हुई थी माला।

राघव के जूते और सिया के चप्पल,
ऊपर से रेशम वस्त्र पड़ा था निर्मल,
रत्नों से कर शृंगार सुमन की माला.
मणियों का सतरंगा होता उजियाला।

सखियाँ बोलीं – हे राघव ! कहना मानो,
ये मेरे कुल के इष्टदेव पहचानो,
श्रद्धा से करो प्रणाम राम रघुराई,
जीवन भर मंगल घड़ी रहे मनभाई।

बोले श्रीराम—"हमारे मंगलदाता,
निज इष्टदेव हैं सब प्रकार सुखदाता,
उनसे बढ़कर कोई न हमें दिखलाये,
तो, बोलो क्यों? और किसके माथ झुकायें?"

बहु बिधि सखियों ने कहा, न राघव माने,
लाचार ले गयीं उनको अन्य ठिकाने,
अब लखन और शत्रुघ्न की बारी आयीं,
उनको भी सखियाँ उसी ठौर पर लायीं।

यह कहा—"तुम्हारे भाई अभी गये हैं,
कुल इष्टदेव के पूर्ण प्रणाम किये हैं,
अब तुम भी करो प्रणाम प्रेम भक्ती से,
जीवन मंगलमय बने देव-शक्ती से।

लक्ष्मण ने कहा कि—'इष्ट एक है मेरा,
उसको ही अब तक सकल विश्व में हेरा,
है यह सिद्धान्त अकाट्य, कभी न रुकेगा,
औरों के पद पर मेरा सर न झुकेगा।"

जब देखा गर्म स्वभाव, उन्हें पधराया,
अब तो रिपुसूदन का अग्रिम क्रम आया,
वे बोले—"पहले यह आवरण हटाओ,
तब फिर प्रणाम की बात जुबाँ पर लाओ।"

वे बोलीं—"ये तो सदा छिपे रहते हैं,
इसलिये इन्हें सब 'गुप्त देव' कहते हैं,
पहले तुम करो प्रणाम, तभी दरशन हों,
आशीर्वाद को पाय सुखी तन-मन हों।"

शत्रुघ्न ने कहा—"जिसे न कभी निहारा,
उससे प्रणाम का रिश्ता नहीं हमारा,"
माताओं से शिक्षित थे चारो भैय्या,
इसलिये न भूले उनकी भूल-भुलैया।

इनको भी वहीं पठाय, भरत को लाईं,
भोले भाले को देख बहुत हरषाईं,
कुलदेव यही हैं, करो प्रणाम ललाजू,
हो जाओगे तुम पूरणकाम ललाजू।

सब जान रहे थे भरत यहाँ की करणी,
पर घटना उनके लिये बनी मन हरणी,
हो गये पुलकतन नैनन जल बरसाये,
अकुलाकर अतिशय प्रेम भरे मन धाये।

साष्टांग प्रणाम किया धरणी पर गिरकर,
गद्गद वाणी हो गयी, प्रेम तन निर्भर,
"हे नाथ! आज तुम मिले दीन को जैसे,
सीता माँ की पगतरी सहित हो जैसे।

ऐसी ही मुझ पर कृपा रहे निशिवासर,
हे 'पाहि पाहि' तव शरण पड़ा हूं प्रभुवर !"
फिर उठे और व्याकुल वाणी से रोये,
शृंगार क्षेत्र में करुणा का रस बोये ।

तच्छण सिंहासन का आवरण हटाया,
पगुतरी सिया की—प्रभु की, शीश चढ़ाया,
गद्गद वाणी हो गयी पुलकतन छाती,
आँसू की धारा चली, न बरणी जाती ।

मैं कौन ? कहाँ हूं ? भूल कैकेयी नन्दन,
'हे राम-राम' का करते करुणा क्रन्दन,
दूसरे कक्ष में बैठे थे रघुराई,
'हे राम राम' की टेर श्रवण में आई ।

दौड़े राघव तत्काल वहाँ पर आये,
यह दशा भरत की देख नयन जल छाये,
उमड़ा करुणा का सिन्धु बन्धु उर लाये,
'हे भरत-भरत' के शब्द राम-मुख आये ।

जो दशा इधर थी, वही राम की गति थी,
दोनों में प्रेमोन्माद, मिलन की अति थी,
मानो श्रृंगार दो रूप बनाकर आया,
उर अमित प्रेम का सिन्धु मिलन मन भाया ।

यह दृश्य विलोकि चकित अंतःपुर नारी,
जय हुई पराजय में परिणत मनहारी,
क्या करते क्या हो गया ? यही अनबन था,
शृंगार-विपिन में करुणा का क्रन्दन था ।

हैं भरत संत, यह महिमा सबने देखी,
श्री राम चरण में उर अनुराग विशेखो,
सब सखी चरण में गिरीं भरत-रघुबर के,
हरिभक्ति-सरोरुह-विपिन-सुघर दिनकर के ।

'हे भरतलाल ! सब भांति साधु तुम ज्ञानी,
है नहीं किसी ने महिमा अब तक जानी,
जीवन आदर्श बनेगा जग का प्यारा,
हे भक्त भरत ! लीजिये प्रणाम हमारा ।"

श्री भरत-माहात्म्य

पं० उमादत्त सारस्वत, बिसवाँ (सीतापुर)

विश्व भरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥

वाल्मीकीय रामायण में भरत जी को विष्णु का अंशावतार बतलाया गया है । तभी तो —

भरत सरिस को राम सनेही । जग जपु राम राम जपु जेही ॥

स्वयं भगवान राम ही जिसका ध्यान किया करते हों, उन महात्मा भरत की महिमा का वर्णन कर ही कौन सकता है ।

बड़ वशिष्ठ सम को जग मांहो—ऐसे वशिष्ठ भी उनकी महिमा का पार नहीं पा सके ।

भरत महा महिमा जल रासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबलासी ॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा । पावत नाव न बोहित बेरा ॥

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार भरत जी जब अपने ननिहाल से लौट कर आये तो कौशिल्या जी ने भरत को स्वार्थी, बन्धुविरोधी तथा कुटिल कह कर उनका तिरस्कार किया । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भरत भी कैकेयी के षडयन्त्र में सम्मिलित हैं । बेचारे भरत जी ऐसे कठोर शब्द सुनकर तिलमिला उठे परन्तु साँच को आँच कहाँ । वे सब कुछ सहन कर गये । इस समय उन्होंने अपने निष्कपट एवं उज्ज्वल चरित्र का ऐसा परिचय दिया कि माता कौशिल्या का भ्रम दूर हो गया । फिर क्या था—

भरत सुभाय माय हिय लाये । अति हित मनहुँ राम फिरि आये ।
माता भरत गोद बैठारे । आंसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥

इतना ही नहीं—

अस कहि मातु भरत हिय लाये । थन पय स्रवहिं नयन जल छाये ॥

अयोध्यावासी भी भरत के आदर्श चरित्र से परिचित थे । तभी तो वे सब एक साथ कह उठेः—

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ।
जो पावँरु अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई ।।
सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता--इत्यादि

सम्पूर्ण मानस में भरत जी के समान उज्ज्वल चरित्र वाला पात्र कदाचित् दूसरा नहीं है। राम के विषय में भले ही कुछ लोग बालि बध, तारका बध तथा शम्भूक वध इत्यादि कुछ स्थलों के औचित्य पर सन्देह करते हों (भले ही उनका सन्देह निर्मूल हो) परन्तु श्री भरत लाल के चरित्र की उज्ज्वलता एकदम निष्कलंक है। देवताओं से लगाकर साधारण अयोध्यावासियों तक, सभी लोगों ने समय-समय पर—भरत जी की प्रशंसा की है। अयोध्याकाण्ड में कई ऐसे स्थल आये हैं, जिनसे भरत जी के आदर्श चरित्र तथा उनके माहात्म्य का पता लगता है। तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी से आवाज आती है:-

तात भरत तुम सब बिधि साधू। रामचरन अनुराग अगाधू ।।

भरद्वाज मुनि ने भी भरत जी की प्रशंसा निम्नलिखित शब्दों में की—

अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु ।
सकल सुमगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ।।
सो तुम्हार धन जीवन प्राना। भूरि भाग को तुम्हहिं समाना ।।
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेम पात्र तुम सम कोउ नाहीं ।।

स्वयं भगवान राम का जो प्रेम पात्र हो तथा जिस की सराहना 'अखिल ब्रह्माण्ड नायक' स्वयं ही अपने श्री मुख से करता रहता हो उसके चरित्र की उज्ज्वलता का क्या कहना ! चित्रकूट में स्वयं भगवान राम कहते है —

तात भरत तुम धरम धुरीना। लोक वेद बिधि प्रेम प्रवीना ।।
करम बचन मानस विमल, तुम समान तुम तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुन, कुसमय किमि कहि जात ।।

भगवान राम के दिये हुए इस 'प्रमाण पत्र' ने भरत के चरित्र को कितना ऊँचा उठा दिया है यह कहने की आवश्यकता नहीं। चित्रकूट की नारी सभा में माता कौशिल्या जी सुनयना जी से भरत लाल के विषय में कहती हैं :—

राम शपथ मैं कीन न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ ।।
भरत सील गुन विनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई ।।
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे ।।
जानउ भरत सदा कुल दीपा। बार-बार मोंहि कहेउ महीपा ।

कौशिल्या जी ने राम की शपथ खाकर भरत जी के गुणों का वर्णन किया है। एक उच्च कोटि के चरित्रवान महापुरुष में जो गुण होने चाहिए वे सभी गुण भरत में विद्यमान हैं। भरत के गुणों का वर्णन करने में जब स्वयं सरस्वती को ही 'हिचक' है तो साधारण पुरुष उनका गुणगान कहाँ तक कर सकता है। वास्तव में भरत जी कुल दीपक थे।

कौशिल्या जी को राम की चिंता कम तथा भरत की चिन्ता अधिक है। भरत राम के बिना घर पर नहीं रह पायेंगे इसे वे भली भाँति समझती थीं। उनको भय था कि राम के वियोग में भरत लाल कुछ अनर्थ न कर बैठें। सुनयना जी ने कौशिल्या जी का सन्देह जनक जी को सुनाया तो वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। वे सुनयना जी से कहते हैं—

धरम राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ जथा मति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥

★ ★ ★ ★ ★

भरत महा महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

जनक जैसे विरक्त एव ब्रह्मज्ञानी महापुरुष भी जब भरत जी का पवित्र आचरण देखकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। तो साधारण मनुष्य की बात ही क्या! श्री भरतलाल की महा महिमा का वर्णन राम भी तो नहीं कर पाते! जानते तो हैं परन्तु उनकी आद्यन्त बिहीन महिमा का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। भरत भैया को चित्रकूट से बिदा कर देने के बाद उनके वियोग में राम कितना बिह्वल हो रहे हैं। यह निम्नांकित पंक्तियों में देखिये :—

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाँहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाव सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥

श्री भरतलाल का माहात्म्य कहते-कहते भगवान राघवेन्द्र अघाते नहीं हैं मानो भरत जी की प्रशंसा करने के लिये वे अवसर ही खोजा करते हों। वार्तालाप तो वे मित्रों से कर रहे हैं और स्मरण भरत का हो रहा।

तभी तो—तुम प्रिय मोंहि भरत सम भाई।

रामायण में तीन प्रसंग और ऐसे आये हैं जहाँ भरत जी को मर्म भेदी पीड़ा पहुंची है। परन्तु वे उन आघातों को सहन ही नहीं करते अपितु उन अवसरों पर भी उन्होंने अपनी सहृदयता, सहनशीलता तथा उज्ज्वल चरित्र ही का परिचय दिया है।

निषादराज गुह को चतुरंगिणी सेना के साथ भरत को आते हुए देख कर मन में कुछ शंका हुई। उसने यही समझा कि भरत राम का अनिष्ट करने जा रहे हैं। उसने अपना सन्देह प्रकट भी कर दिया। भरत जी ने जिन मार्मिक शब्दों में निषादराज को उत्तर दिया, उनको सुनकर एक पाषाण हृदय जीव भी बिना विचलित हुये नहीं रह सकता। गुह की सारी शंकायें दूर हो गईं। बाल्मीकि जी ने इस प्रसंग का जिस प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है, वह उन्हीं के योग्य है।

श्री भरद्वाज जी ने भी भरत के चरित्र पर सन्देह किया था। यद्यपि तुलसीदास जी ने इस प्रसंग पर एक प्रकार से पर्दा डाल दिया है तथा उन्होंने भरद्वाज मुनि के द्वारा भरत लाल की प्रशंसा ही की है तथापि बाल्मीकीय रामायण के अनुसार भरद्वाज जी ने भरत जी के चरित्र पर केवल शंका ही नहीं की, वरन उन्होंने उनको यहाँ तक कह डाला कि "क्या तुम्हारा इरादा राम तथा लक्ष्मण को वन में कुछ हानि पहुंचाने का तो नहीं है? यहाँ बन में तुम्हारा किस कारण आगमन हुआ?" वह सुनकर भरत जी अत्यन्त दुखी हुये तथा रोने लगे। उनके कोमल हृदय पर वज्र की चोट पड़ी, परन्तु वहाँ भी भरत ने जिस सहृदयता का परिचय दिया, वह स्तुत्य है।

इसी प्रकार जब भरत जी चित्रकूट के निकट पहुंचते हैं तब लक्ष्मण जी ने भी शंकी की उस समय यदि आकाशवाणी न हो गई होती तथा भगवान राम अपने वचनों द्वारा लक्ष्मण जी की शंकाओं का समाधान न करते तो लक्ष्मण इस दिन घोर अनर्थ किये बिना न रहते। इस प्रकार यद्यपि भरत जी सर्वथा निर्दोष थे तथापि उनको शंकालुओं के कटु वचन सहने पड़े। वास्तव में भरत एक धर्मात्मा, वीतराग तथा संत स्वभाव महापुरुष थे। उन्होंने किसी के ऊपर क्रोध नहीं किया, उल्टे अपने ही को धिक्कारते रहे। भरत जी की इस सहनशीलता की समानता करने वाला उदाहरण संसार में उपलब्ध नहीं है।

भरत की पितृ भक्ति, मातृ भक्ति, गुरु भक्ति तथा भ्रातृ स्नेह सभी कुछ सराहनीय है। कैकेयी ने जब अपनी दुष्टता का वर्णन और अपने दो वरदानों की बात बतलाई तो भरत जी तिलमिला उठे। अनायास ही उनके मुख से निकल पड़ा :—

मांगत बर मन भई न पीरा। गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा।

परन्तु तत्काल ही वे सावधान हो गये। मन ही मन मानों उन शब्दों को वापस लेते हैं और कहते हैं :—

राम विरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह विधि मोहि ।
मों समान को पातकी, वादि कहौं कछु तोहि ।।

सारे अनर्थ की जड़ मन्थरा थी । शत्रुघ्न लाल उसको दण्ड देने लगे— परन्तु 'भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई ।' इससे सिद्ध होता है कि भरत जी के हृदय में अत्यधिक दया भी थी ।

चित्रकूट से भगवान राम की चरण पादुकायें लेकर वापस आये । शुभ मुहूर्त पर पादुकाओं को सिंहासन पर विराजमान किया । इसके बाद चौदह वर्ष जिस संयम से व्यतीत किये, वह वर्णनातीत है :—

नन्दिगांव करि परन कुटीरा । कीन्ह निवास धरम धुर धीरा ।
जटा जूट सिर मुनि पट धारी । महि खनि कुस सांथरी सवारी ।।

★ ★ ★

लखन राम सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ।।
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब विधि भरत सराहन जोगू ।।

भरत जी के उस कठिन तप को देख कर बड़े-बड़े मुनि लज्जित हो जाते थे । राम तथा भरत के आचरण को जब लोग एक तुला में रख कर तोलते तो उसमें भरत जी ही सब प्रकार से प्रशंसनीय सिद्ध होते थे ।

ज्यों-ज्यों श्री राघवेन्द्र के आने का समय निकट आता था, त्यों-त्यों प्रेमाधिक्य के कारण उनकी व्याकुलता और भी बढ़ती जाती थी ।

कारन कौन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ।।
अहह धन्य लछिमन बड़ भागी । राम पदारबिन्द अनुरागी ।।
कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ।।
जौं करनी समुझहिं प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी । इत्यादि ।

सच्चे भक्त की वास्तव में यही दशा होती है । ऐसा उपासक अपने उपास्य में कोई दोष ही नहीं देखता है, वह सदैव अपने को ही दोषी समझता है। स्व० जिगर बिसवानी का शेर है :—

'राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा हो ।
जो हम कहें वो क्यों हो, जो तुम कहो वही हो ।।'

अन्त में हनुमान जी से मिलने पर तथा उनके द्वारा भगवान राम के आने की शुभ सूचना पाकर जैसी दशा हो गई, उसका वर्णन शब्दों द्वारा करना नितान्त असम्भव है :—

निज दास ज्यों रघुवंश भूषण कबहुं मम सुमिरन करयो।

भरत का माहात्म्य कहने के योग्य नहीं, केवल समझने ही के योग्य है। वास्तव में गोस्वामी जी की यह वाणी अक्षरशः सत्य है :—

भरत चरित करि नेम, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस विरति॥

❋ भरत - शील ❋

श्री मानस जी शास्त्री (मानस मंदिर, हाथरस)

मानवीय सद्‌गुणों में शील एक ऐसा विशिष्ट गुण है जिसका विकास अन्तःकरण में होने पर सभी गुण विशेष उसी हृदय को आश्रय बना लेते हैं इसी लिए शील गुण को मानवीय गुणों में प्राथमिकता दी जाती है।

रामचरित मानस की रचना का प्रमुख उद्देश्य मानस को शील गुण सम्पन्न बना कर प्रभु चरणोपासना में संलग्न करना है इसीलिए गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ के नायक प्रभु श्रीराम को परम विशिष्ट शीलता की उपाधि से विभूषित किया है। एक दर्शन प्रमुख है :—

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान ।
तुलसी कहूं न राम सों, साहिब सील निधान ॥

ऐसा शीलनिधान स्वामी संसार में दूसरा नहीं है। स्थान-स्थान पर प्रभु के शील का दर्शन कराते हुए गोस्वामी जी ने शील की पराकाष्ठा का स्वरूप तब चित्रित किया जब कि स्वयं पिता श्री महाराज दशरथ भी श्री राम के विशिष्ट शील गुण के लिये भगवान शंकर से प्रार्थना करते हैं –

आसुतोष तुम्ह औढर दानी। आरति हरहु दीन जन जानी ॥
तुम्ह प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहि देहु ।
बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ॥

ऐसे ही शील गुण सम्पन्न भगवान राम रूपी देह की छाया स्वरूप श्रीभरत लाल जी के भी शील का दर्शन मानस में अद्‌भुत है। शील का सामान्य स्वरूप है कि श्रद्धा पूर्वक बड़ों की महत्ता को हृदय में स्वीकार करना परन्तु भरत जी में तो इससे भी अधिक स्वर्ण सुगन्धि योग है कि प्रभु श्री राम की महत्ता को सब प्रकार स्वीकार करते हुए अपने को अपराधी और दोषी समझना यह शील के साथ दैन्य भक्ति का समन्वित स्वरूप है। यही कारण है कि श्री भरत जी को जीवन में एक यही क्लेश रहा कि भर नेत्र प्रभु के

श्री मुख की शोभा को वे कभी न निरख सके। उन्होंने चित्रकूट में सभा के समक्ष अपने अन्तःकरण की इसी वेदना को इन शब्दों में व्यक्त किया :—

मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेउ खेल जितावहिं मोही ॥

महूं सनेह सँकोच बस, सनमुख कहे न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥

एकान्त में वह शील सम्पन्न पात्र इसी चिंता में मग्न है कि प्रभु अयोध्या लौटेंगे या नहीं। समस्त वन क्षेत्र सो रहा है परन्तु जाग रहे हैं दो शील व्रती महानुभाव ! एक हाथ में धनुष-वाण लिये प्रहरी बना रक्षा कर रहा है जगत की अनुपम निधि उज्ज्वल मणि श्रीरामचन्द्रजी और दूसरा करवट लेता हुआ चिन्तन में मग्न है। क्या प्रभु अवध चलकर सिंहासन स्वीकार करेंगे। परन्तु उनसे निवेदन कौन करे ? हाँ ! श्री गुरु महाराज यदि आज्ञा दें तो स्वामी अवश्य स्वीकार करेंगे परन्तु क्या गुरु जी आज्ञा देंगे। क्योंकि वे तो प्रभु की रुचि का ही निर्वाह करेंगे—

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी।
मुनि पुनि करब राम रुचि जानी ॥

हाँ, वात्सल्य मयी बड़ी माँ कौशिल्या जी यदि भैया को आज्ञा दें कि राम ! अयोध्या चलो तो प्रभु अवश्य लौट चलेंगे परन्तु क्या यह भी सभव है।

मातु कहेहुं बहुरहिं रघुराऊ।
राम जननि हठ करबि कि काऊ ॥

माँ तो श्रीराम से हठ करेंगी नहीं तो तुम्हीं क्यों नहीं प्रभु से लौटने की प्रार्थना हठ पूर्वक करते ! अरे भाई तुम तो छोटे भाई हो। छोटा बड़ों से हठ कर सकता है और बड़े छोटों की हठ का परिपालन करते हैं। यही लोक व्यवहार है। यह विचार आते ही श्रीभरतजी चौंके। क्या कहा ! मैं प्रभु से हठ पूर्वक अयोध्या लौटने की प्रार्थना करूँ। शिव ! शिव ! ऐसा तो कभी संभव ही नहीं है क्योंकि—

मोहिं अनुचर कर केतिक बाता।
तेहि महँ कुसमउ बाम विधाता ॥
जो हठ करउँ त निपट कुकरमू।
हर गिरिते गुरु सेवक धरमू ॥

एकउ जुगुति न मन ठहरानी।
सोचत भरतहिं रैन बिहानी॥

कैसा अनुपम चित्र है शील से परिपूर्ण हृदय का। श्रीभरतजी एक बार भी खुलकर अपने मन की बात न कह सके। कहें भी तो कैसे यह जीवन की अतृप्ति है। 'सनमुख कहे न बैन।'

एक बार तो श्रीगुरु महाराज ने प्रभु के समक्ष भरी सभा में श्रीभरत को निर्देश दिया—

तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिन्धु प्रिय बन्धु सन, कहहु हृदय कै बात॥

साथ ही सरकार की यह घोषणा भी कम महत्व की नहीं है —

भरत कहहिं सोइ किये भलाई।
अस कहि राम रहे अरगाई॥

परन्तु शीलनिधि अपनी वाणी से यह न कह सके—भैया अयोध्या लौट चलें, कहा भी तो शील परिवेष्टिता गिरा में ही—

तिलक समाज साज सब आना।
करिय सुफल प्रभु जों मन माना॥

सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय अवध सनाथ।
नतरु फेरियहि बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई।
बहुरिय सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिय सोई॥

मेरी रुचि को रखने में प्रभु के हृदय की प्रसन्नता न रही तो मैं जीवन भर श्रीचरणों का वियोग सहने को तैयार हूं। परन्तु अपने लिए प्रभु को संकोच में नहीं देख सकता। यह कितना विशिष्ट उदाहरण है शील का।

शील निधान भगवान और शील संपन्न भरत की भावना का दर्शन करें। भक्त भूलकर भी अपने में गुण नहीं देख पाता और सरकार अपने भावुक भक्त भैया भरत में कभी दोष नहीं देख पाते। यही कारण है श्रीभरत जी अपने

में जिन-जिन दोषों का वर्णन करते हैं प्रभु उनका निराकरण करके अलौकिक गुणों का प्रख्यापन करते हैं। श्रीभरतजी अपने को कहते हैं—

मो समान को पाप निवासू।
जेहि लगि सीय राम बनवासू॥

प्रभु ने चित्रकूट की सभा में गदगद कंठ से कहा—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥

भरतलाल जी श्रीत्रिवेणी पर प्रार्थना करते हैं—

जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहहु गुरु साहिब द्रोही॥

सरकार ने उत्तर देते हुए सभा में कहा—

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई॥

इस प्रकार श्रीभरतलालजी के शील का दर्शन हमें श्री रामचरित मानस में स्थान-स्थान पर होता है। प्रस्तुत लेख में दो एक झाँकियों के दर्शन कराके अपने हृदय और लेखनी को पवित्र करने का प्रयास किया है वस्तुतः तो—

"भरत भरत सम जानि"

पृष्ठ चार का शेषांश

हमारे यहां का सिद्धान्त ही था। महाराज मनु के लिए धर्म सम्पादनार्थ कितना सुन्दर लिखा गया—

होत न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुःख लाग, जनम गयउ हरि भक्ति बिनु॥

यही कारण है कि शत्रुघ्न की कथा श्री मानस में बहुत कम है। कहीं-कहीं झलक मात्र दिखा दी गयी है। वास्तव में कथा का कम होना इस बात की ओर इंगित करता है कि भारतीय परम्परा में अर्थ का कोई महत्व नहीं रहा है। जबकि तीनों भाइयों अर्थात राम, लक्ष्मण, भागवत भरत की कथा से अर्थात मोक्ष, काम और धर्म की कथा से सम्पूर्ण ग्रन्थ भरा पड़ा है। अर्थ की सम्पन्नता में भी धर्म का अंकुश दान के रूप में सर्वत्र रहता था। इसीलिए "दान परशु बुद्धि शक्ति प्रचण्डा" अर्थात अर्थ की ममता को काटने के लिए दान ही प्रखर कुठार है। अर्थ का अक्षुण्ण सम्बन्ध धर्म से है। इसीलिए कहा गया है—

"सो धन धन्य प्रथम गति जाकी" अर्थात धर्म का नियंत्रण अर्थ के ऊपर है। यही भारतीय परम्परा है। जो श्री भरत और शत्रुसूदन के स्नेह बन्धन के द्वारा लक्षित कराया गया है। चारों भाइयों के संम्बन्ध को एक रूपक के द्वारा समझा जा सकता है। जैसे एक भाग के प्रश्न में चार प्रमुख भाग होते हैं। जिसको भाग दिया जाता है भाज्य श्री राम भगवान हैं क्योंकि उन्हीं का अंश वितरित हो रहा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

जिससे भाग दिया जाता है वह आधार भाजक के रूप में श्री भरतलाल जी हैं। धर्म के आधार पर ही सृष्टि का उत्पादन किया जाता है। धर्म के आधार पर जीवन यापन करने पर जो विभूति और ऐश्वर्य न चाहते हुए भी प्राणी के पास स्वयं उपस्थित हो जाता है वही अर्थ के रूप में लब्धाङ्क (भजनफल) है जो शत्रुघ्न हैं। शेष, भाज्य का विशेष अंश होने के कारण ही जीवाचार्य श्री लखन के नाम से जाने जाते हैं। इसीलिए अभिन्नत्व श्री राम के साथ हैं—

आगे राम लखन बने पाछे। मुनिवर वेष विराजत आछे॥
उभय बीच श्री सोहत कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥

दूसरी जोड़ी में धर्म से ही उपलब्धियां प्राप्त की जा सकती हैं। इसको दिखाने के लिए ही श्री भरत और शत्रुसूदन का अभिन्नत्व है क्योंकि जहा धर्म है वहां अर्थ रहेगा ही। यथा :—

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये। धर्म शील पहँ जाय सुभाये॥

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब धर्म और मोक्ष का शाश्वत सम्बन्ध है, दोनों ही एक दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। और जब काम का सम्बन्ध अर्थ से अधिक है। तब यहाँ मोक्ष को काम के साथ और धर्म को अर्थ के साथ क्यों कर दिया गया है। श्रीराम को भरत से अलग करके और लखन और शत्रुसूदन को पृथक करके एक महान गूढ़ रहस्य को सामने रखने का प्रयास किया है। श्रीभरत जी वियोगी हैं। श्रीलखन संयोगी हैं। पर सम्बध की प्रगाढ़ता श्रीभरत से जितनी अधिक है शायद लखन से उतनी नहीं। जहां विशेष योग होता है, वहीं तो वियोग है। संयोग में तो प्रेमास्पद का अपमान भी हो सकता है. विस्मरण भी हो सकता है, पर वियोग तो एक क्षण के लिये प्रेमास्पद का विस्मरण नहीं कर सकता। वास्तविकता यह है कि वियोग ही अलौकिक संयोग का आनन्दभाव जगत में प्राप्त करता है। जो संयोगी को नहीं प्राप्त हो सकता। इसीलिए भगवान राम जानकर कि भरत मेरे वियोग की अवधि के उपरान्त न सह सकेगा प्राणान्त ही इसका एक मात्र उपाय होगा, अस्तु श्रीराम ने विभीषण से कहा था—

तापस वेश गात कृश, जपत निरन्तर मोहिं।
देखौं बेगि सो जतन करु, सखा निहोरौं तोहिं॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावौं बीर।
भरत दशा सुमिरत प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर॥

श्रीभरत की त्याग-तपस्या तथा उपास्य के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण ही श्रीभरत, श्रीराम से भी अधिक सम्माननीय हो गये। चित्रकूट में विवेकी, वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित लोगों का यह निर्णय आज भी भरत के यशचन्द्र को समुज्ज्वल कर रहा है।

दुहुँ दिशि समुझि कहत सब लोगू। सब विधि भरत सराहन योगू॥

यदि श्रीभरत को वियोग की परिधि में न रक्खा जाता तो यह यश सौरभ न प्राप्त होता। पुनः प्राकृतिक दृष्टि से भी यह क्रम ठीक है कि गोरे

के ऊपर सांवले का नियंत्रण रहे। गोरे गोरे का साथ प्रकृति विरुद्ध है पर गोरे के ऊपर श्याम का आधिपत्य प्रकृति सिद्ध है। गोरे शरीर पर तिल का काला विन्दु तो चौगनी शोभा को सरसाता है पर यदि कहीं श्याम शरीर पर गोरे विन्दु पड़ जायं तो फिर कितना अच्छा लगेगा, इसका पाठक स्वयं निर्णय कर लें। इस प्रकार के गोरे विन्दु को कुष्ठ की संज्ञा दी जाती है। फिर धर्म और मोक्ष के ऊपर तो किसी का नियंत्रण रह ही नहीं सकता। इसीलिए उनके प्रतीक श्रीराम और भरत दोनों ही काले रंग के हैं। यह विश्व विश्रुत है कि काला रंग ही सबके ऊपर अपना आधिपत्य रखता है। पर उसके ऊपर किसी रंग का भी प्रभाव नहीं पड़ पाता है। इसीलिये भगवान सांवले रूप में ही आते हैं चाहे वह श्रीराम के रूप में हों या श्रीकृष्ण के रूप में, क्योंकि वही जगत के अधिपति हैं, उनके ऊपर तो किसी का भी अधिकार नहीं हो सकता है। एक कवि की काले रंग की प्रशंसा में एक भावपूर्ण काव्य का अवलोकन कीजिये—

यों तो कहने के लिये रंग हैं दुनियाँ में सभी।
रंग वह है कि जो चढ़ जाय तो उतरे ही नहीं॥
रंग लाखों हैं मगर सबका असर जाता है।
दम में चढ़ता है तो दम भर में उतर जाता है॥
रंग सब खुद में छिपाले यह सिफत श्याम में है।
रंग अपना सा बनाले ये सिफत श्याम में है॥

अस्तु युगुल जोड़ियों में गोरे के ऊपर श्याम का आधिपत्य रखा गया है। श्रीलखन संयोगी तथा नित्य सेवा साहचर्य में रहने के कारण भगवान राम के प्रति मोह युक्त है। उनका यह भाव 'ममैवांशो'' वे मेरे हैं बन गया है। ममत्व की पराकाष्ठा मानस में उस समय दृष्टिगोचर होती है जब श्री राम समुद्र से रास्ता देने की याचना कर रहे हैं। श्री लक्ष्मण ने विनय करने का प्रतिवाद किया पर श्री राम न माने। उनकी प्रतिक्रिया के रूप में लक्ष्मण के मोह युक्त वचनों का अवलोकन कीजिये। भले ही इन शब्दों से उनके इष्टदेव का अपमान ही क्यों न ध्वनित होता हो। वे श्री राम के प्रति इन वचनों में बोले—

कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

पर श्री भरत लाल जी ने वियोग में अनवरत श्री राम पाद-पद्मों का ध्यान करते हुये अपने को ही अपमानित किया है। श्री रामजी की किसी भी स्थिति में उन्होंने कोई टीका नहीं की। तीर्थों, मुनियों तथा गुरुदेव,

पुरजन, परिजनों से उन्होंने यदि कुछ चाहा है, तो वह है श्री रामचरणकमल में प्रीति का वर्धन। उनका दासत्व और दैन्य से भरा हुआ यह भाव कितना प्रिय है। "तस्यैवाऽहम्" मैं उनका हूं। उनका भाव था—

राम करहिं जेंहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास।

श्री राम से सम्बन्धित जो कुछ भी उन्हें मिलता है वह उनका उपास्य है, इस सारल्य और भाव की तीव्र भूमिका के कारण ही प्रकृति के कण-कण ने इनकी सेवा में अपना सौभाग्य माना है–

किये जाहिं छाया, जलद सुखद बहइ वर बात।
तस मग भयउ न राम कहं, जस भा भरतहिं जात।।

भगवान राम ने इसीलिए श्री भरत को जो प्यार भरा आशीर्वाद दिया है, शायद वह मानस के किसी पात्र को नहीं प्राप्त हुआ। मानस के सभी सात्विक पात्रों को अपना-अपना विशिष्ट स्थान है पर श्री भरतलाल तो भक्तों की माला में सुमेरु है। वे भगत शिरोमणि हैं। श्रीराम के अमोघ वाक्यों को देखिये श्रीभरत की महिमा का इससे अधिक क्या वर्णन हो सकता है·

मिटिहहिं पाप प्रपन्च सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार।।
भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।।

जहाँ ज्ञान रूपी माता कौशिल्या ने मोक्ष के स्वरूप भगवान राम को उत्पन्न करके स्वकीर्ति में चार चांद लगाये तथा भक्ति स्वरूपा माता सुमित्रा ने भक्ति की परम्परा का निर्वाह करते हुये अपने एक पुत्ररत्न को एक एक इष्टदेव के पीछे लगा कर स्वयं रामरस में सराबोर हो गयी हैं। वहाँ कर्म की गहन भूमिका का निर्वाह करते हुए माता कैकेयी ने राम बन-गमन रूपी तीक्ष्ण जहर का पान कर अमृत स्वरूप राम रस श्री भरत के माध्यम से प्रकट कर समस्त बसुधा को जो अपार रससिंधु प्रदान किया है वह और कोई दे ही नहीं सकता। शंकर ने जहर पान कर केवल देवताओं का हित किया था, पर माता ने स्वपुत्र के माध्यम से जो किया वह देवाधिदेव के भी कार्य से प्रशंसनीय है :—

कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।

कर्म के पेट मे उत्पन्न होकर श्री भरत ने भक्ति के प्रवाह में बहते हुये भी कर्म की उपेक्षा नहीं की। लोक मर्यादाओं का सदैव रक्षण करते हुये

सजग प्रहरी की भाँति श्री अवध के द्वार पर श्री राम की संपदा का रक्षण करते रहे। कर्म और उपासना का विशिष्ट समन्वय उनके जीवन में दिखाई पड़ता है। अन्यथा लोगों ने तो यह कहा है कि—

प्रेम नदी उमड़त जबै, कृष्ण चन्द की ओर।
लोक बेद मर्याद के, पर्वत डारत फोर॥

पर श्री भरत जी इसके अपवाद थे। श्री लखन और श्री भरत में यदि तुलना की जाय तो निष्कर्ष यही निकला है कि यदि श्री लखनलाल श्री राम रूपी पताका के दण्ड हैं तो श्री भरतलाल उस दण्ड का पवित्र आधार हैं जिन्होंने अपनी तपस्या और त्याग के कारण राम प्रेम की भावमयी पीठिका तैयार कर दी है। अस्तु श्री भरत उस पवित्र दण्ड का आधार है।

भरत भूमि रह राउरि राखी।
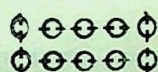
भरत-विवेक

पं० मानस प्रपन्न त्रिपाठी रामायणी, सेमरीखेड़ी, सागर (म० प्र०)

श्री राघवेन्द्र प्राण, प्रेममूर्ति, तपःपूत वैराग्य विग्रह, भक्त शिरोमणि श्रीभरत लाल जी का स्मरण करते ही समस्त सद्गुणों का समाज बरबस अन्तःकरण में प्रविष्ट होने को बाध्य हो जाता है। लगता है गुण उनका अनुगमन करते में अपनी सार्थकता अनुभव करते होंगे। उनके प्रत्येक गुण, चरित्र दिव्य भव्य उदात्त हैं। उनकी प्रीत का स्मरण करके "रसो वै सः ,, रसेश्वर राम रस से सराबोर हो जाते हैं।

प्रीति भरत कै समुझि प्रभु, पुनि-पुनि पुलक शरीर ।

उन श्रीभरत के विवेक पर यदि कुछ कहा जा सके तो वह उन्हीं की कृपा से संभव हो सकता है।

उनका विवेक यदि समुद्रवत अगाध होता तो उनके गर्भ में जाकर अन्वेषण का साहस भी एक बार किया जा सकता था, सूर्य होता तो पाने के लिये उड़ान की कल्पना करने की बात भी सोची जा सकती थी।

पर वह तो है स्वयं ब्रह्म का विग्रह बराहावतार, जिसका प्राकट्य सृष्टि-उद्धार हेतु हुआ था।

विवेक का कार्य है मोह, भ्रम, शोक का विनाश करना।

'होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। —·········———— ॥

'शोक निवारेउ सबन्हकर निज विज्ञान प्रकाश।

'शोक कनक लोचन मति छोनी। ··· ··—·········——— ॥

'भरत विवेक वराह विशाला। ·······—····—·········— ॥

परिणाम है—तब रघुनाथ चरण अनुरागा।

श्री राम चरणों में अनुराग (प्रेम)।

श्री भरत का विवेक निर्गुण नहीं, सगुण है। निराकार नहीं, साकार है, प्रम ण नहीं प्रत्यक्ष है!

प्रत्येक गुण जब अपनी पूर्णता पर पहुंचता है तो वह प्रकट होकर उपस्थित हो जाता है, इनके सभी गुण पूर्ण हैं, पूर्ण का सानिध्य पाकर प्रेमामृत को देखिये–

सिय राम प्रेमपियूष पूरन होत जन्म न भरत को।

इन्हें विवेक प्रकट करने की आवश्यकता तब पड़ी जब देखा कि चित्रकूट में महामुनियों का समूह शोक निवारण में अपनी असमर्थता प्रकट करता है, परम विरागी विदेहराज भी सक्षम नहीं, लोक शोक सिन्धु में निमग्न होते जा रहे हैं। श्री अवध में भी यही दशा थी तब इन्होंने ही सहारा दिया था।

अवशि चलिय बन राम जहं. भरत मंत्र भल कीन्ह।
शोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥

चित्रकूट का चित्र भी ठीक ऐसा ही है—

सुनि सुधि शोच विकल सब लोगा।

अस्तु ! अब श्री भरतलाल के विवेक की थोड़ी सी झलक देखिये—सब लोग शीघ्रता में चित्रकूट आ गये हैं राम-प्रेम के आकर्षण से, परन्तु अब निर्णय कौन दे और कैसे दे ? एक ओर हैं—

राय राम कहं कानन दीन्हा।
राखेउ राम सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन त्यागी॥

दूसरी ओर–

दुहुं समाज अस रुचि मन माहीं। बिनु सियराम फिरब भल नाहीं॥
सीताराम संग बन बासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥

ऐसी स्थिति में निर्णय बहुत कठिन हो रहा है। एक ओर धर्म है तो दूसरी ओर प्रेम।

श्रीराम प्रेम परवश है "राम सकोची प्रेम बस—... तथा साथ ही धर्म पालक भी—धरम सेतु पालक तुम ताता.......... प्रेमधर्म का निर्वाह एक साथ हो ऐसा निर्णय उत्तम होगा।

श्रीभरत जी अपनी बात एक दोहे में कहते हैं पर वह इतनी क्लिष्ट है कि पालन असंभव। उनकी बात—

राखि राम रुख धरम व्रत, पराधीन मोहिं जान।
सब कर सम्मत सर्बहित, करिय प्रेम पहिचान॥

उक्त दोहे में चार बातें हैं १— रामरुख की रक्षा । २— धर्मव्रत का निर्वाह । ३— सबकी सम्मति । ४— सबका हित । ये हों किन्तु प्रेम के पहिचानते हुये होना चाहिए ।

इस पर श्रीगोस्वामीजी ने स्वयं टिप्पणी की है जिसे समझने की अतीव आवश्यकता है । टिप्पणी यह है—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अर्थ अमित अति आखर थोरे ।।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी । गहि न जाइ असि अद्भुत बानी ।।

आप इसे ५ भागों में विभक्त कर सकते हैं ।
१—सुगम २—अगम ३- मृदु ४—मंजु ५—कठोर ।

व्याख्यात्मक प्रणाली इस प्रकार होगी—
अर्थ अमित अति आखर थोरे । एवं—
ज्यों मुख मुकुर······——··········
गहि न जाइ अस··········· -

अभिप्राय यह है कि भरत लाल जी का सुझाव है उसको समझना है अत्यन्त कठिन । आगे व्याख्यान चलता रहा उसी संदर्भ में विवेक का स्पष्टीकरण हुआ ।

भरत विवेक बराह विशाला । अनायास उघरी तेहि काला ।।

पश्चात एक सर्वमान्य, सैद्धान्तिक, शास्त्रानुमोदित, सामयिक निर्णय की घोषणा सभा के मध्य में की गई । क्योंकि यदि श्रीरामजी का रुख रखते हैं तो सर्व सम्मत नहीं होगा धर्मव्रत से हित संभव नहीं । इससे रामाज्ञा पर निर्णय हुआ कि—

सब कर हित रुख राउर राखे । आयसु किये मुदित फुर भाखे ।।

यानी रामाज्ञा जो होगी वह धर्म सम्मत सर्वसम्मत, सर्वहित की दृष्टि से दी जावेगी । उसे अस्वीकार करने का साहस भी नहीं कर सकता । क्योंकि सिद्धान्त यह है कि—

ईश रजाय सीस सबहीं के । उतपति थिति लय विषहु अमी के ।।
तथा—मेटि जाइ नहिं राम रजाई ।
तथा—प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई ।

ब्रह्मर्षि गुरुवर वशिष्ठ जी का अभिमत भी यही है कि—

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करहिं मोर मत येहू ॥

श्री भरत जी का अंतिम निर्णय इसी प्रकार

अब कृपालु जस आयसु होई। करौं शीश धरि सादर सोई ॥

श्रीरामाज्ञा पर इनका जो विश्वास है वह अकाट्य है कि—

राम रजाइ मेटि मन माही। देखा सुना कतहुं कोउ नाहीं ॥

"रामो विग्रहवान् धर्मः" के सिद्धान्तानुसार श्री रामजी की आज्ञा धर्म सम्मत, सर्वहित, सर्वसम्मत, होगी ही यही एक मात्र अवलम्ब है। श्रीभरतजी ने अपने विवेक वराहावतार ब्रह्म विग्रह से यही निश्चय किया। प्रभु की आज्ञा से माता-पिता, गुरु सभी की आज्ञा का पालन हो जायेगा जिसमें वे अपने को असमर्थ मान रहे थे। आप इस "राम रजाइ मेटि मन माहीं" को देखें तो यह उनके निर्णायक प्रवचन का मुख्य अंश है आप इसे हर कसौटी पर कस कर देख सकते हैं। आइये इस पर विचार कर लिया जाय।

श्रीराम की आज्ञा कोई मन से भी नहीं मेट सकता, ऐसा न देखा गया न सुना गया किन्तु रामचरितमानस का मंथन करने से लगता है कि उक्त सिद्धान्त का खंडन हुआ है। उदाहरण के लिये आप मानस के दो विशेष पात्रों को लीजिये जो सरकार के अतिप्रिय, अभिन्न एवं प्राण प्रिय हैं। एक हैं उनकी परमाह्लादिनी शक्ति, पराम्बा माँ मैथिली, दूसरे हैं अखंड सेवा व्रती, सुमित्रानंदवर्द्धन लक्ष्मण कुमार।

श्री राम वनगमन पर किशोरी जी सोचती हैं कि—

चलत चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
कि तनु प्रान कि केवल प्राना। ....

वात्सल्यमयी माँ कौशिल्या ने राघवेन्द्र से कहा—

सो सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥

★ ★ ★

अस विचार जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

परमप्रभु ने आदेश दिया कि—

रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चन्द्र बदनि दुख कानन भारी ॥

कहिये इस आदेश का यदि पालन हुआ होता तो बन साथ में जाने का कोई कारण नहीं था।

ठीक इसी प्रकार का आदेश लषणलाल जी को दिया कि—

रहहु तात अस नीति बिचारी । सुनत लषण भये व्याकुल भारी ।।

किन्तु वे भी प्रार्थना करके साथ ही गये।

१-लै जानकिहिं जाहु गिरि कंदर।
२-तुम लछिमन रन मारेहु ओही।

अक्षरशः पालन हुआ।

इस स्पष्टीकरण से "राम रजाइ मेटि मन माहीं" वाले भरत सिद्धान्त का खण्डन हुआ सा लगता है किन्तु ऐसा तो नहीं हो सकता। अब थोड़ा विचार पूर्वक अन्वेषण करके गहराई से देखियेगा तो एक शब्द पकड़ में आता है उक्त तीनों चौपाइयों में 'बिचारी' लिखा है अर्थात् विचार कर—

१-रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चन्द्र बदनि .. ..
२-रहहु तात अस नीति विचारी। - ....
३-सीता केरि करहु रखवारी। विधि विवेक बल समय बिचारी ।।

आदेश है बिचार कर रहना। अभिप्राय कि आज्ञा बिचार करने के लिये है। अन्यथा चार की आज्ञा पर विचार करना पाप है। जैसे—

मातु पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं बिचार करिय शुभ जानी ।।
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू ।।

लक्ष्मण कुमार को आरण्यकांड में आज्ञा जो रक्षार्थ दी गई थी। विचार न करके पालन करना चाहा था, तब सरकार ने स्वयं ही प्रेरित करके विचार कराया।

मरम बचन जब सीता बोली।......... पर जब ये नहीं गये तब प्रेरणा करनी पड़ी, जिससे मति डोल उठी।

हरि प्रेरित लछिमन मति डोली।

तात्पर्य यह है कि जहाँ विचार की छूट है वहीं विचार की आज्ञा है। जहाँ पालन हुआ वहां सीधी आज्ञा है विचार का कोई उल्लेख नहीं। जैसे-

१-तुम पावक महँ करहु निवासा।............
२-लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर.........
३-तुम लछिमन रन मारेहु ओही ....

अन्यथा जो सती शिरोमणि सिय अपने प्राणधन की आज्ञा पर अनिश्चित समय अग्नि में रह सकती हैं, वे अवध में न रह सकेंगी। "आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" के सिद्धान्त पर चलने वाले सेवक लक्ष्मण जी क्या आज्ञा पालन नहीं कर सकते।

दोनों को इसलिए "हृदय बिचारी" कहा कि इनकी गति सरकार के मन तक है जैसे- पिय हिय की सिय जाननिहारी।

तथा

लखन लखेउ प्रभु हृदय खंभारू।

अतः यह है भरत जी के विवेक की गहराई की एक झलक जो विवेक मात्र दृष्टा हो वह उपयोगी नहीं जब तक सृष्टा न हो। इनका विवेक वराह सृष्टा एवं "निरखि विवेक बिलोचनहि" दृष्टा है। एक शरीर से पृथक हो साकार बनकर सृष्टि का उद्धार करता है तो दूसरा दृष्टा रहकर उपकार। देखिये निम्न तालिका--

विवेक बराह	विवेक बिलोचन
सृष्टा	दृष्टा
त्राण दाता	प्राण दाता
विकाशक	प्रकाशक
प्रचारक	विचारक
उत्कर्ष प्रदायक	निष्कर्षदायक
शोक हर्ता	संकोचहर्ता
प्रयास कर्ता	प्रश्वास प्रदाता

यह विवेक सप्तक विचार हेतु यथेष्ट है। इनका कहना ही नहीं प्रत्युत कृत्य भी क्रियात्मक स्वरूप में परिणित होता है, इसी से वे अनुपम अद्वितीय असाधारण हैं। भरत विवेक ब्रह्म बराहावतार की जय।

भरतहिं जानि राम परिछाहीं

लेखक :
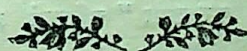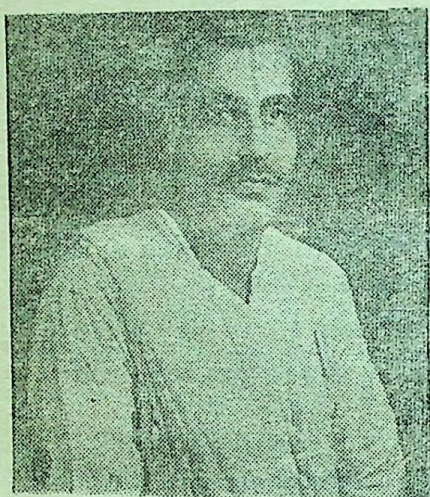
सुप्रसिद्ध मानस मर्मज्ञ
पं० राम रक्षित शुक्ल 'रामायणी'
बिलासपुर (म० प्र०)

जयति भूमिजा-रमणा पद कंज-मकरंद-रस
रसिक मधुकर भरत भूरि भागी ।
भुवन भूषण भानुवंश - भूषण भूमिपाल-
मणि रामचंद्रानुरागी ॥

श्री रामानन्य अनुरागी राघवेन्द चरण चचंरीक भूरि भागी भैया श्री भरत लाल जी को गोस्वामी जी ने श्री राघवेन्द्र की समानता में ही वर्णन किया है ।

भरत राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥

अनुहारी का अभिप्राय है रूप-रंग,व्यवहार-चलन, गुण-प्रभाव, महत्व आदि सभी में श्री भरत लाल भगवान राघवेन्द्र की समानता में ही हैं । कहीं कहीं तो "राम ते अधिक राम कर दासा" चरितार्थ हो जाता है ।

गोस्वामी जी ने श्री रामनाम के महत्व पर वर्णन किया है कि श्री राम के नाम का वणंन स्वयं नामी राघवेन्द्र नहीं कर सकते ।

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥

ठीक इसी तरह भक्तवत्सल राघवेन्द्र भरत-महिमा वर्णन करने में असमर्थ हैं।

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

जिस तरह से श्री राम पद पद्म का स्नेह विश्व अमंगल नाशक एवं शांति दायक है वैसा ही श्री भरत चरण का स्नेह भी विश्व अमंगल नाशक है। श्री भरत लाल जी के लिए जिस समय देवताओं ने यह निश्चित किया कि "अब सुरकाज भरत के हाथा और हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं" क्यों कि निज गुन सील राम बस करतहिं, तब गुरु देव ने कहा कि—

जिन्ह कर नाम लेत जग माँहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होंहि पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

श्री भरत नाम महिमा पर स्वयं भगवान श्री राघवेन्द्र ने चित्रकूट की भरी सभा में कहा—भरत, तुम्हारे चरित्र पर तुम्हारे व्यवहार पर कुटलाई सोचने वाले का लोक-परलोक बिगड़ जायगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥

श्री राघवेन्द्र के दोनों परिकर श्री लक्ष्मण एवं निषादराज ने घोषित किया था कि भरत कुटिल हैं, अतः 'जाइ लोक परलोक नसाई' सुनकर रोने लगे तब श्री रामभद्र ने कहा-भरत तुम पर कुटिलाई सोचने वाले का प्रायश्चित्त यह है (श्री भरत नाम का महत्व है) कि :—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुखु, सुमिरत नाम तुम्हार॥

श्री राम कथा के महत्व पर गोस्वामी जी ने लिखा है कि :—
सादर मज्जन पान किए ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते॥

ठीक वैसे ही भरत कथा के महत्व पर भी वर्णन आया है :—
पाप पुंज कुन्जर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥

श्री राघवेन्द्र के लिए देवताओं ने ऐसी व्यवस्था की थी कि—
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥

परन्तु श्री भरत लाल जी के लिये इससे बढ़कर व्यवस्था हुई—
किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बरबात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥

श्री राघवेन्द्र चित्रकूट में निवास करते हैं। उनके दर्शन लाभ से चैतन्य प्राणी विशोकी एवं जड़ परम पद के अधिकारी बनते हैं—

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥

परन्तु श्री भरत लाल जी के दर्शन ने तो भवरोग से रहित ही कर दिया—

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भवरोगू॥

श्री राघवेन्द्र भरत लाल जी के पावन नामों का जाप करते हैं—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

श्री भरतलाल के स्मरण में राघवेन्द्र करुणा में डूब जाते हैं—

बीते अवधि जाउँ जौं, जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर।

श्री भरत लाल जी भी सदैव श्री राघवेन्द्र के पावन नामों का जप करते हैं. स्मरण में रो पड़ते हैं, राघवेन्द्र के निवास स्थल को देखकर अधीर हो जाते हैं—

जबहिं राम कहि लेहिं उसाँसा। उमगत प्रेम मनहुं चहुं पासा॥
द्रवहिं बचन सुन कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूछत सखहिं कहत मृदु बानी॥
राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके॥
राम राम रघुपति जपत, श्रवन नयन जल जात।

समानता स्वभाव के नाते श्री भरत जी ननिहाल में हैं। मां कैकेई के द्वारा श्री भरत जी के राज्य का प्रस्ताव हुआ तो राघवेन्द्र सरकार के शुभ अंग फड़कने लगे और उसका फल भरतागमन सोच रहे हैं—

राम सीय तन सगुन जनाये। फरकहिं मंगल अंग सुहाये॥
पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

इधर श्री राघवेन्द्र लंका से लौट रहे हैं। श्रीराम राजा होंगे तब भैया भरत लाल के अंग फड़कने लगे और सगुन का परिणाम श्री राघवेन्द्र सोच रहे हैं—

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन विचार॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

भगवान श्री राघवेन्द्र निरुपम हैं। श्री राम के समान राम ही हैं। गोस्वामी जी ने वर्णन किया कि —

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भांति निज निज मति बिलास मुनीस हरहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ताकर सील कस न अस होई॥
आप सरिस खोजौं कहँ जाई।

अत: श्री राघवेन्द्र • परिछाहीं भरत जी भी अनुपम हैं। श्री रामभद्र जी ने भरी सभा में चित्रकूट में कहा—

करम बचन मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात॥
निरुवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कवि कुल मति सकुचानि॥

श्री राम भरत में समानता ही के नाते चित्रकूट में दोनों भाइयों ने एक दूसरे के ऊपर एक सी जिम्मेदारी दी। भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुवर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥

श्री भरत लाल जी ने भी अपने स्वामी को मन प्रसन्न हो सकुच तजि आज्ञा देने को कहा—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अनरेव॥

इन्हीं सब कारणों से जिस समय भगवान जी राघवेन्द्र ने सारा निर्णय का भार श्री भरत लाल को दे दिया तो देवता लोग चिंतित होने लगे। अंत में श्री भरत जी का ही स्मरण करते हुए सोचने लगे—

अब सुर काज भरत के हाथा।
आन उपाय न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक सेवा।
हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि॥

अतः सारी जिम्मेदारी श्री भरतलाल जी को ही देवताओं ने भी दे दिया। तब देव गुरु श्री वृहस्पति जी ने कहा कि देवताओं,

भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं॥

श्री राम जय राम जय जय राम।

भरत के भाग्य

श्री विश्वम्भर नाथ मिश्र, बरहुआं (रायबरेली)

नन्दि ग्राम के तरुण तपस्वी ! मेरा अभिनन्दन ले लो।
राम मिलन के पथिक ! हमारे जीवन का कन-कन ले लो ॥
चित्रकूट की अचल शिलाओं ! मेरा पद-वन्दन ले लो।
गंगा यमुना सरस्वती ! यह मेरा देवार्चन ले लो ॥

जिसके प्रेम-परिधि पावन को पा न सके वनबासी राम।
उस धर्म-ध्वज तेज-पुंज को मेरा शत-शत कोटि प्रणाम ॥

जटा जूट जर्जर कुश आसन राम भजन माला पावन।
देख हिली मानव की छाती हिला अवध का सिंहासन ॥
चरण पीठ थे श्री रघुबर के राम मूर्त्ति के युगल नयन।
अमर लोक था आज कर रहा त्याग तपस्या का तर्पण ॥

तिलक किया कामद गिरि ने मन्दाकिनि ने रस सरसाया।
आज अयोध्या का राजा देवता सत्य बनकर आया ॥

गुरु से गौरव मिला जनक से योग मिला सम्मान मिला।
लक्ष्मण से बन्धुत्व जानकी से जीवन का दान मिला ॥
भरद्वाज से भर-भर अंजलि वैभव का वरदान मिला।
तुम को मिला प्रभुत्व प्रभू से आन मिली आह्वान मिला ॥

आज शची की ईर्ष्या में बस गया माण्डवी का सौभाग्य।
धुंधला था खिल उठा कमल सा आज केकयी मां का भाग्य ॥

"भयउ न भुवन भरत सम भाई"

लेखिका :
सुश्री शिव कुमारी पाण्डेय "शिवे"

स्थान :
बनारी, पो० जांजगीर, जिला बिलासपुर
(मध्य प्रदेश)

भरतं निर्मलं शान्तं रामसेवापरायणम् ।
धनुर्बाणधरं वीरं कैकेयीतनयं भजे ॥

श्री रामचरित मानस भारतीय ग्रन्थ ही नहीं विश्व महाकाव्य है, जो सामाजिक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी और दैनिक जीवन में प्रेरणा देने वाला है। जिसमें पिता पुत्र का आदर्श, माँ बेटे का आदर्श, पति-पत्नी का आदर्श, सेवक स्वामी का आदर्श एवं भाई भाई का आदर्श पठनीय एवं अनुकरणीय है। श्रीभरत जी के समान उज्ज्वल एवं आदर्श चरित्र वाला भाई विश्व के इतिहास में नहीं मिलेगा।

श्रीभरत लाल जी महासागर के समान गंभीर, गंगा जल के समान पवित्र हृदय के हैं। उनके चरित्र में कहीं भी कोई दोष नहीं है। वे महान धैर्यशाली एवं सर्वगुण संपन्न हैं। त्याग और तपस्या की तो मानों सजीव मूर्ति ही थे। उनका आदर्श भातृ प्रेम अतुलनीय है। पिता मृत्यु के पश्चात श्री भरत अपने ननिहाल से वापस लौटते हैं। नगर के बाहर से ही उन्हें वहां के अशांत वातावरण का आभास हो जाता है। माता कैकेयी प्रसन्न मन से आरती उतारती हैं। यह देखकर श्रीभरत को महान आश्चर्य होता है कि वहां माता के सिवाय कोई प्रसन्न नहीं दिखाई दे रहे थे। वे पूछते हैं माँ, पिता जी

और अन्य सभी माताएं कहाँ हैं और मेरे प्रिय भाई राम, लक्ष्मण एवं सीता कहाँ हैं ? इस पर माता कैकेयी महाराज दशरथ की मृत्यु पहले बताती हैं। उसके बाद मृत्यु के कारण एवं राम का बनवास प्रसंग सुनाती हैं । अपने बड़े भ्राता श्रीराम के बनवास का दुखद समाचार सुनकर भरत पिता की मृत्यु को भूल गये और महादुख से संतप्त हो व्याकुल हृदय से माता को बहुत कुछ बुरा भला कहते हैं।

जो पै कुरुचि रही अति तोही।
जनमत काहे न मारे मोही ।।
बर मांगत मन भइ नहिं पीरा ।
गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा ।।

श्रीराम के बनवास की बात सुनकर जो व्यक्ति पिता की मृत्यु को भूल जाय, राम का पक्ष लेकर जो अपनी जन्मदात्री, स्वर्ग तुल्य अहैतुक कृपा करने वाली माता की भी भर्त्सना कर दे, ऐसा राम स्नेह का अनूठा उदाहरण अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगा।

श्रीभरत को राज्य का लोभ नहीं था। संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश न होगा जहां राज्य के लोभ में पड़कर भाई-भाई का, पिता पुत्र का एवं अन्य सम्बन्धियों का युद्ध न हुआ हो किन्तु भरत निर्विकार संत थे, उन्हें राज्य से क्या प्रयोजन। भगवान श्रीराम के सामने धर्म बन्धन था, पिता की आज्ञा थी, किन्तु भरत जी के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं थी, न कोई धर्मबन्धन। वे चाहते तो सहर्ष राज्य कर सकते थे। शास्त्र सम्मत, पिता जिसे राज्य दें राज्य का अधिकारी होता है, साथ ही महापंडित गुरु वशिष्ठ जी ने भी आज्ञा दी—

यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू, सिर धरि राज रजायसु करहू,
रायँ राजपदु तुम्ह कहुं दीन्हा, पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा।

श्रीराम-माता कौशिल्या की भी अनुमति थी:—
कौशल्या धरि धीरजु कहई, पूत पथ्य गुरु आयसु अहई।
सो आदरिअ करिअ हित मानी, तजिअ बिषादु काल गति जानी।
प्रयाग पहुँचने पर राज्य करने का समर्थन धर्मज्ञ भरद्वाज जी ने भी किया:-
लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई।

गुरुजनों की आज्ञा, माता का अनुरोध, पुरवासियों की व्यथा सब मिल कर भी उन्हें अपने सत्य संकल्प से विचलित नहीं कर सके। अयोध्या के विशाल राज्य को तृण के समान त्याग देते हैं। यह नि:स्वार्थ भ्रातृ प्रेम का कितना महान आदर्श है।

श्री भरत लाल जी स्वभाव से साधु शिरोमणि एवं महात्मा थे। साथ ही आदर्श स्वामिभक्त थे। श्री राम को लौटाने चित्रकूट गये। रास्ते में निषाद गुह से भेंट हुई। राम का भक्त समझकर उन्हें गले से लगा लिया।

करत दंडवत देखि तेहिं, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुं लखन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥

भक्त शिरोमणि भरत निषाद राज को साथ लेकर श्री राम दर्शन को जा रहे हैं। सेवकों ने प्रार्थना किया कि घोड़े पर बैठ जायें। इस पर उन्होंने सेवक का धर्म बतलाते हुए कहा—

रामु पयादेहिं पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउं उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरम कठोरा॥

श्री भरत को प्रयाग में गंगा-यमुना के श्यामल और धवल जल के रंग को देख कर युगल जोड़ी राम और सीता का स्मरण हो आया, स्नेह सिंधु उमड़ आया। शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा "हे तीर्थ राज" आज मैं क्षत्रिय धर्म त्याग कर भीख मांग रहा हूं :-

व्यथित व्यक्ति कोई भी कार्य कर देता है तो उसे दोष नहीं माना जाता। ध्यान रहे धर्मात्मा भरत ने भीख सांसारिक विषय नहीं माँगा, उन्होंने अपने क्षत्रिय धर्म को त्याग उससे भी बड़ा धर्म राम। चरणों में अनुराग माँगा।

अरथ न धरम न कामरुचि, गति न चहहुं निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन॥

जानहुं राम कुटिल करि मोहीं। लोग कहइ गुरु साहब द्रोही॥
सीताराम चरन रति मोंरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

आगे चलकर वे भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे। वहां भगवान श्री राम के वन या-त्राकी चर्चा हुई। इस पर भरत ने कहा कि मुझे किसी भी बात कीचिंता नहीं, दुख

केवल इस बात का है कि—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं,
करि मुनि वेष फिरहिं बन बनहीं ॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती,
भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं,
सोधेहुं सकल विश्व मन माहीं ॥

और इसका दुख तभी मिटेगा जब भगवान राम अयोध्या लौट आयेंगे।

महर्षि भरद्वाज जी ने अनेक प्रकार से समझाकर आतिथ्य स्वीकार करने को कहा। विरागी भरत ने कंद-मूल-फल लेकर ही उनका सम्मान किया।

संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पींजरा। राखे भा भिनुसार ॥

राम चरणानुरागी भरत चित्रकूट की ओर चले।

लखन राम सिय पंथ कहानी । पूछत सबहिं कहत मृदु बानी ॥

उनके विश्राम स्थलों को देखकर अनुराग उमड़ पड़ता है। उनके राम प्रेम को देखकर चर-अचर सभी मुग्ध हैं। तभी तो पृथ्वी कोमल हो गयी। बादलों ने छाया किया।

देखि दसा सुर बरसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला ॥
किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥

श्री राम भरत का मिलन होता है और उस समय का स्नेह देखकर पत्थर भी पिघल गये। आज भी चित्रकूट के पत्थर इस प्रेम मिलन के साक्षी हैं। प्रथम सभा होती है। उसमें वशिष्ठ जी भरत की परीक्षा लेते हुए कहते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लषन सीय रघुराई ॥

किन्तु भरत इसमें भी विजयी हुए। भगवद् भक्त की परीक्षा ली, इसी से वशिष्ठ जी हार गये।

"मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी"। ऐसी स्थिति हो गयी।

श्री भरतजी अपने संकोची स्वभाव के कारण कभी भी श्री राम के सम्मुख खड़े होकर बात नहीं करते थे। चित्रकूट की सभा में उन्हें पहली बार परिस्थितिवश बात करने को बाध्य होना पड़ा।

यह कितनी उच्चकोटि की मर्यादा है। भरत ने श्री राम को अयोध्या लौट चलने के लिए प्रार्थना की। इस पर श्री राम ने बहुत सी धर्म संगत बातें कहकर उन्हें समझाया। अन्त में निर्णय यही हुआ कि भरत अयोध्या लौट जायें। उन्होंने अपने बड़े भ्राता श्री राम की आज्ञा पालन किया और चरण पादुका लेकर अयोध्या लौट आये। वहाँ वे नन्दि-ग्राम में कुटी बनाकर, मुनि वेष धारण करके नियम से रहने लगे।

उनका नेम प्रेम अवर्णनीय है। भगवान श्री राम की चरण पादुकाओं को सिंहासन में रखकर श्रद्धा से नित्य पूजा करते हैं। और इन्हीं से आज्ञा माँग कर राज्यकार्य करते हैं।

कर्म योगी स्वामि भक्त भरत के उत्तम नियम आचरण एवं गोमूत्र, यावकाहार को देखकर सब लोग राम से भी अधिक भरत की सराहना करते हैं।

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू।।

चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने को एक दिन बाकी रह जाता है। श्रीभरत में स्नेह सिंधु का भाव पुनः उमड़ता है। सच्चे प्रेम में दोनों प्रेमियों का हृदय अभिन्न होता है चाहे कितनी ही दूर रहें। दोनों की एक ही दशा होती है। भरत और राम के मन में एक ही भाव उठ रहे हैं। लंका में श्रीराम विभीषण से कह रहे हैं।

बीते अवधि जाहुं जो, जियत न पावउं वीर।

इधर अयोध्या में भैया भरत भी निश्चय किये बैठे हैं—

बीते अवधि रहहिं जो प्राना। अधम कवन जग मोहिं समाना।।

हनुमान के मुख से भगवान के आने का समाचार सुनकर वे हर्ष से विह्वल हो गये। उन्होंने हनुमान को हृदय से लगा लिया। भगवान श्री राम आ जाते हैं और भरत को प्रेम से गले लगाकर मिलते हैं। भ्रातृवत्सल भरत का चरित्र निःसन्देह सराहनीय है। यद्यपि लक्ष्मण जी ने भी श्रीभरत की तरह अपने व्यक्तित्व को राम में मिला लिया था। दोनों भाइयों में समानता थी फिर भी भरत लक्ष्मण से आगे ही थे। तभी एक भक्त ने कहा—

सेवा ते सुमिरन बडो, लोक वेद यह रीति।
लक्ष्मण तो साथहि रहे, अधिक भरत पर प्रीति।।

श्री राम के मन में भी भरत के लिए कितना ऊंचा भाव था। वे चित्रकूट की सभा में गुरुजनों के सम्मुख श्रीभरत की प्रशंसा करते हुए प्रमाणित करते हैं—

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई।।

और गोस्वामी जी ने भी गीतावली में लिखा—

जब ते चित्रकूट ते आये।
नंदि ग्राम खनि अवनि डासि कुश परनकुटी करि छाये।

★ ★ ★ ★

भए न हैं, न होहिंगे कबहूं भुवन भरत सम भाई।

भरत हंस रवि-वंश तड़ागा

(आचार्य पं० श्री रामकुमार अगस्त्य 'कुश' मं०मा० संघ पीढ़ी, रायबरेली)

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार ।।

शंका होती है कि क्या विमल वंश (रघुवंश) में कुछ अवगुण आ गया है जिसे श्रीराघव, गुरुदेव वशिष्ठ तथा लक्ष्मण जी भी नहीं दूर कर सके। श्रीमानस जी में हंस तीन कोटि के प्राप्त होते हैं। १–हंस २–कलहंस ३–राजहंस।

हंस क्षीर-नीर को विलगाता है। 'ज्ञान विराग विचार मराला'।

चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति ।। क्षीर-नीर विवरन गति हंसी।
हंस वंश गुरु जनक पुरोधा। हंस वंश दशरथ जनक राम लखन से भाइ ।।

कलहंस–अपनी बोली के लिये प्रसिद्ध है।

'बोलत जल कुक्कुट कलहंसा'। 'कूजत मंजु मराल मुदित मन'।

राजहंस–चाल के लिये उपमित किया गया है।

भैया भरतलाल ने अपने सुयश से प्रकाश किया है। यथा—

भरत हंस रविवंश तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा ।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जश कीन्ह जगत उंजियारी ।।

यह प्रकाश (Heaven Light) अथवा उजाला कौन सा है तथा रघुवंश में क्या दोष उत्पन्न हो गया है? इस चर्चा के समय श्रीभरतलाल अपने ननिहाल से पधारे थे। उनको कुल गुरु श्री वशिष्ठ जी तीन बार आदेश देते हैं। १– पिता वचन चाहिय फुर कीन्हा।

२– अवसि नरेश वचन फुर करहू। अंततः गुरु आज्ञा गरीयसी मानी जाती है। क्योंकि प्रथम की दोनों आज्ञाओं का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। अतः कड़ा अनुशासन लागू होता है—

करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर वचन हित जानी।

साथ ही आज्ञा दी कि पुनः श्रीराम की पन्द्रहवें वर्ष की वापसी में राज्य का उलट-फेर कर लेना।

सौंपेउ राज राम के आए। सेवा करब सनेह सुभाए ।।

मंत्रियों ने भी गुरु-आज्ञा का ही प्रतिपादन किया। बड़ी माता कौशिल्या अम्बा ने भी समर्थन करते हुए उसे पथ्य अथवा अनुपान श्री गुरुदेव वशिष्ठ की आज्ञा बतलाई। सिद्धान्ततः इसे पथ्य ही नामकरण दिया गया।

जीवन में कभी-कभी ऐसे भी स्थल प्राप्त होते हैं जहाँ प्रतिकूल परिस्थितियों का सीधा विरोध करना पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में क्या कर्त्तव्य निर्धारित करना चाहिए इसके लिये भी हमें श्रीमानस महाकाव्य की शरण लेनी चाहिए अन्यथा संघर्ष, विरोधभाव की अग्नि प्रज्वलित हो सकती है। आइये मानस की कतिपय घटनाओं में सिद्धान्त की खोज करें।

इसी भाँति से सदाशिव शंकरजी तथा सती की वार्ताओं में विरोधभाव उत्पन्न हो गया था। जब पराम्बा सती जी का पितृयज्ञ में जाने का आग्रह हुआ तब शिव जी ने विचार किया कि हम यदि इसका सत्वर विरोध करते हैं तो गृह द्वन्द्व होगा, अस्तु प्रथम वे सती वार्ता का अनुमोदन करते हैं। पुनः विरोध करने लग जाते हैं। यथा:—

समर्थन— पिता भवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होय।
तौ मैं जाउं कृपायतन, सादर देखन सोय॥

समर्थन शंकर जी के वचन थे—
यदपि मित्र प्रभु पित गुरु गेहा। जाइय बिनु बोले न संदेहा।

किन्तु पुनः विरोध किया:—
तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहां गये कल्यान न होई॥

परिणामतः महासती जी को प्राण त्यागना ही पड़ा। इसी प्रकार से श्री भरतलाल जी को विरोधी वार्ता में लक्ष्मण जी को प्रभु रामजी के द्वारा प्रथम समर्थन करते हुए समझाना पड़ा था। यथाः—
कही तात तुम नीक उपाई। सबसे कठिन राज मद भाई॥

यहाँ यदि सीधे विरोधात्मक वार्ता करते तो सदैव सेवा निरत श्री लखनलाल जी के हृदय में भारी ठेस लगती, कि मैं इनके दुःख-सुख का संरक्षक हूं और भगवान् भरत २ रट लगाते हुए उन्हें अधिक मान्यता दे रहे हैं। श्रीराम अब समझाते हुए विरोध करते हैं कि—
लखन तुम्हारि सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना॥
भरतहि होइ न राजमद, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुंकि काँजी सीकरनि, क्षीर सिंधु बिनसाइ॥

पूर्णरूपेण श्री लक्ष्मण जी को समाधान हुआ जबकि श्री भरतजी गिरिबर चित्रकूट की झाँकी के अवसर पर लकुट की भांति भूमि पर दन्डवत के लिये प्रणिपात करने लगे। और इस दृश्य को केवल लक्ष्मण ने ही देखा क्योंकि श्रीराम की पीठ उस ओर थी। वे जानबूझ करके भी अनसुनी कर रहे थे। तात्पर्य यह था कि यदि लखनजी श्रीभरत का समर्थन करें तब हम परिस्थिति का समाधान करेंगे। यही हुआ भी—

वचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रणाम भरत जिय जाने॥

फिर कहा:—

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

तभी भरत की चार वस्तुएँ मिलीं और श्रीराम जी ने भी चार ही चीजों का त्याग किया:—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनु तीरा॥

इस प्रकार उन भीषण घटनाओं में जो घटित होने जा रही थीं सुधार हो गया।

अब पुनः प्रसंग पर आ जाइए। निष्कर्षतः परिजन, पुरजन, मातृदल, मंत्रिवर्ग एवं गुरुदेव जब सभी एक मत हो एक स्वर से प्रेमावतार श्रीभरत सुबन्धु को राज्य ग्रहण कराने को कटिवद्ध हो जाते हैं तो उन्होंने सोचा विरोध करने के पूर्व सभी का समर्थन करना चाहिये। अस्तु वे बोले:—

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय मति जानी॥
उचित की अनुचित किए विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥

श्रीभरत जी ने कहा कि मैं सर्व भावेन असमर्थ हो रहा हूं। क्योंकि मुझे एक विचित्र रोग हो गया है। जिसके कारण मैं रोग में भोग की वार्ता सोच ही नहीं पाया हूं। यथा:—

सरुज शरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भक्ति जाय जप जोगा॥
यह दुख दाह दहइ नित छाती। भूख न वासर नींद न राती॥

गुरुदेव ने कहा- क्यों न रोग का निदान सुर वैद्य अश्वनी कुमार से कराया जाय। अभी हम उन्हें सुरलोक से आवाहन करते हैं। श्रीभरत जी ने कहा हमारा कुरोग वैद्य नहीं दूर कर सकते। केवल उसकी एक मात्र औषधि है। सभी के आग्रह पर पुनः बोले:—

आन उपाय मोहि नहि सूझा। को जिय की रघुपति बिनु बूझा॥
एकइ आंक यहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं॥

आपनि दारुन दीनता, कहउं सबहिं समुझाइ।
देखे बिनु रघुवीर पद, जिय की जरनि न जाय॥

कहना नहीं होगा तत्काल सभी ओर से समर्थन हो जाता है। और भरत जी का निर्णय सभी को प्रिय लगा।

भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधारस पागे॥
मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह विकल भए भारी॥

सुतरां सभी लोग प्रभु के दर्शनार्थ चित्रकूट को ससैन्य पधारते हैं। वहाँ पर दूर से ही जब गिरिवर पर प्रभु दर्शन किया तभी मिट जाता है वह कुरोग। यथा:—

करि कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरषि हँसि हेरत॥

ज्ञात होता है प्रभु ने आज धनु-वाण को फेरते २ ही वाण की नोक से श्रीभरत जी के जीव की जलन विनष्ट कर दिया।

प्रेमावतार श्रीभरत जी के जिस प्रगाढ़, अगाध प्रेम को श्रीराम जानते थे एवं भरत जी अपने असीम उरस्थल में छिपाये थे। आज प्रभु ने निश्चित कर लिया कि आज श्रीलक्ष्मण एवं सभी के समक्ष व्यक्त करना ही है। अतः

कर्ण वेध उपवीत विवाहा। संग संग सब भयउ उछाहा॥
विमल वंश यहँ अनुचित एकू। बन्धु विहाई बड़ेहि अभिषेकू॥

श्री मानस जी में विहाइ शब्द २१ बार प्रयुक्त हुआ है। जो विभिन्न भाव ४ प्रकार के प्रकटाता है। १—छोड़कर। २—त्यागकर। ३—सिवाय या अतिरिक्त और। ४—अनुपस्थिति में। यद्यपि प्रथम दो में बड़ा सूक्ष्म अन्तर है।

१—ग्रहण का कोई भाव नहीं है जैसे—

अब जानी मैं श्री चतुराई। भजिय तुमहिं सब देव विहाई॥

श्री जी ने प्रथम किसी देव को न ग्रहण न अंगीकार न प्राप्त ही किया है। इस हेतु भाव छोड़कर ठीक होता है।

२—त्याग उस वस्तु का होता है जिसे प्रथम ग्रहण किया जाता है जैसे—

भक्ति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत शारद आवत धाई॥

अर्थात् विधि लोक ग्रहण किया जाना निश्चित स्थान है।

३— विष्णु विरंचि समेत विहाई। चले सकल सुरयान चढ़ाई॥

यहाँ सिवाय अथवा अतिरिक्त भाव में प्रयुक्त है।

४—सुनु खगेश हरि भक्त विहाई। जे सुख चाहहि आन उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकहिं हरि भक्त विहाई॥

यहाँ यह शब्द अनुपस्थिति में आया है न कि त्याग या छोड़कर के अर्थ से प्रयोग होगा।

अत: कथित चौ० में जो श्री रामजी ने शंका उपस्थिति किया उसका भाव सभी टीकाकारों के द्वारा अधूरा हो जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम कभी नियम विरुद्ध लाँक्षन रघुवंश पर नहीं लगावेंगे। रघुकुल में बड़ा पुत्र ही राजा हुआ करता चला आ रहा है। अब प्राचीन परिपाटी क्यों बदली जावे। अपूर्णता यह है कि भैया भरतजी जो क्षत्रधारी परिकर हैं अनुपस्थित पाये जाते हैं। राजगद्दी होने पर क्षत्र का वास्तविक सेवक भरत जी का ही अभाव रहेगा। इस कारण राज्यगद्दी अस्वीकृत की जा रही है।

संग-संग (एक साथ) पर यहाँ तो यह अर्थ न होगा कि एक भाई का कर्णवेध किया गया तो सभी का हो गया। एक का जनेऊ हुआ तो सभी का हो गया और एक का विवाह हुआ तो सभी का हो जाना माना गया। अपितु संग-संग एक निश्चित समय पर कार्य संपन्न हुआ। परन्तु तीनों उक्त कार्य सभी बन्धुओं के अलग २ प्रत्येक के करने पड़े थे।

सुतराँ राघव ने "राम कीन्ह चाहें सोइ होई" वनगमन को ही अंगीकार कर लिया था। ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि दशरथ जी ने जब से राज्य देने की तैयारी करने का आयोजन किया तभी से श्री अवध में अनर्थ होना प्रारम्भ हो गया। जिसे भरत-हंस ने क्षीर-नीर का विवेक करते हुए अन्त में निवारण किया कि समस्त तीर्थों का पवित्र जल लेकर के बिगड़ी हुई वनगमन की वार्ता के निर्णयार्थ कामद गिरि चित्रकूट पर सपरिजन पुरजन प्रस्थान करते हैं। अस्तु उक्त अर्धाली की पूर्ति आ ही जाती है। यथा—

भरत हंस रवि-वंश तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा॥
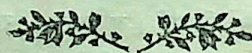
'साकेत-संत' के भरत

डॉ० रामस्वरूप आर्य एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर

राम-कथा के प्रमुख पात्रों के आधार पर आधुनिक काल में हिन्दी में कई काव्यों की रचना हुई है। इस दिशा में 'साकेत संत' (प्रथम संस्करण १९४६ ई०) के रचयिता डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है। भरत का उज्ज्वल चरित्र एक महान आदर्श उपस्थित करता है। उनके चरित्र में हमें कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता। वे परम त्यागी, संयमी, सदाचारी, विनय की मूर्ति तथा नीति निपुण हैं। प्रेम-वैराग्य, धैर्य-क्षमा, वीरता, गम्भीरता, का उनमें अद्‌भुत समन्वय है। 'साकेत-संत में इन्हीं भरत को नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

ग्रन्थ के आरम्भ में भरत के प्रभाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है: —

भरत प्रभाव से भरित पूर्ण हो जो जीव।
भोगी रहते भी वही योगी वही त्यागी॥ पृ० ७

'साकेत संत के भरत कला एवं संगीत-प्रेमी है। वे माण्डवी के वीणा-वादन के उपक्रम से प्रसन्न हो उठते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं—

भरत खिल उठे बढ़ उठे हाथ,
कहा "लो जीवित वीणा साथ।
मिले फिर से रति और अनंग,
सजे फिर घन विद्युत का संग।" पृ० १४

यहाँ भरत एक प्रेमी-पति के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। अपनी पत्नी माण्डवी के प्रति उनका अनन्य भाव है। अपने मामा के यहाँ केकय-प्रस्थान के अवसर पर वे माण्डवी से कहते हैं—

'प्रिये', क्या हम तुम अब भी अन्य !
देह दो हों पर प्राण अनन्य,
बढ़ा यदि आगे आधा अंग,
चलेगा क्या न दूसरा संग। पृ० २३

'साकेत संत में भरत करुणा की सजीव प्रतिमा के रूप में अंकित किए गए हैं। मृगया के समय मृग के वाण लगने पर उसकी आँखों में एक अनोखी कातरता दिखाई पड़ती है, जिससे भरत की आत्मा कंपित हो उठती है—

कुछ ऐसी कातरता थी मृग की आँखों में व्यापी,
शुद्धात्मा भरत कुँवर की करुणा पूरित हो कांपी। पृ०३२

जब भरत के मामा युधाजित् उनके अचूक लक्ष्य-संधान पर उन्हें बधाई देते हैं तो वे उद्विग्न हो जाते हैं और उनकी मृगया की इच्छा मृग के अश्रुजल में बह जाती हैं—

हत्या में कौन सफलता ? हत्या इस पावन थल में।
बह गई चाह मृगया की मृग की आँखों के जल में। पृ० ३३

वे पुन: अपने मामा को उत्तर देते हैं—

निष्ठुर ही यदि होना है मृगया की यदि अभिलाषा।
मारे नर अपनी पशुता बाँधे नर अपनी आशा। पृ० ३८

भरत को उनके मामा का उपदेश है—

शोषण का नय तुम सीखो पोषण अपना तब होगा,
यदि उर कोमल कर लोगे, उत्कर्ष कहां कब होगा ? पृ० ३४

किन्तु भरत की मान्यता है—

निर्धन की कुटिया ढाकर जो अपना महल बनाते,
आहों की फूँकों से ही वे एक दिवस ढह जाते। पृ० ३८

युधाजित् भरत को अयोध्या का भावी शासक मानते हैं। वे दशरथ के साथ कैकेयी के विवाह की शर्त की ओर भरत का ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे कहते हैं—

तुमको राजा होना है अपने को भरत सभाँलो,
रघुपति से यह प्रण लेकर कैकेयी हमने दी है,
तुम समझो युवा हुए हो अब बालक बुद्धि नहीं है। पृ० ४२

किन्तु भरत तो जैसे राज्य की ओर से बिलकुल उदासीन हैं। राम के रहते वे पूर्ण निश्चिन्तता का अनुभव करते हैं—

सीखे जो राजा होगा वह अर्थ काम की बातें।
हैं राम कृपा से अपने सुख के दिन सुख की रातें॥ पृ० ३९

भरत के जीवन में सबसे विषम परिस्थिति उस समय उपस्थित होती है जब राम का वनगमन हो जाता है और वे ननिहाल से लौट कर अयोध्या में प्रवेश करते हैं। कैकेयी से पूछते हैं :—

माँ, कहाँ पिता हैं कहां राम सुखदाई ?
क्यों आज उदासी अवधपुरी में छाई ?

★ ★ ★

माँ बोली "बेटा बहुत न विह्वल होओ।
कर लो थोड़ा विश्राम मार्ग श्रम खोओ॥
बस इतना सुन लो अभी हुए तुम राजा।"
था वाक्य कि वह था सर्प दंश सा ताजा॥ पृ० ४५

कैकेयी के कटु वचन सुनते ही भरत का हृदय हाहाकार कर उठता है। भावावेश में वे कैकेयी को कुचक्री भूमि, मंथरा को नागिन तथा माता कैकेयी को दानवी नारी के रूप में संबोधित करते हैं।

संहार घोर संहार हुआ क्या थोड़ा।
नृप कुल का यश खा गई न कुछ भी छोड़ा॥
धिक् धिक् केकय की भूमि कुचक्रों वाली।
जिसने मंथरा समान नागिनी पाली॥
माँ! कहूं मानवी या कि दानवी नारी।
डाकिनि ने दुर्धर मूठ अवध पर मारी॥पृ० ४७

कैकेयी का पुत्र होने के कारण भरत का हृदय ग्लानि से भर जाता है। वे सोचते हैं मैंने जन्म ही क्यों लिया और यदि जन्म ले ही लिया था तो जीवित क्यों बचा ? जिसके कारण आज सम्पूर्ण अयोध्या दुःखदग्ध है —

मैं पैदा ही क्यों हुआ, हुआ तो अब तक।
जीता ही क्यों बच रहा वंश का कंटक॥
मैं कैकेयी का अंग महा हत्यारा।
मैंने तड़पाकर अखिल अवध को मारा॥ पृ० ५१

यहाँ रामचरितमानस की निम्नलिखित चौपाइयाँ दृष्टव्य हैं —
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि तकत रही न बाँझा॥
....
धिग मोहि भयउ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥

भरत अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हैं। उन्हें पुरजन परिजन सभी का पूर्ण ध्यान है। वे शत्रुघ्न से कहते हैं—

एक कुटुम्ब बना,
अवध का एक कुटुम्ब बना।
सैनिक सचिव सुधारक सेवक सुरुचि सुयोग सना।
शासित शासक, शासक शासित सब सौहार्द-मना।। पृ० १९३

उन्हें राम की सहृदयता पर पूर्ण विश्वास है। अतः वे सोचते हैं—

जाऊँगा मैं विपिन, चरण भैया के गहकर।
हठ पकडूंगा और कहूंगा लौट चलो घर।।
वे हैं दयानिधान मुझे क्या शरण न देंगे,
क्या इतनी सी बात न मेरी वे रख लेंगे। पृ० ७१

भरत की बुद्धि असमंजस में पड़ जाती है। उनकी समझ में नहीं आता कि वे राम से क्या कहें, जिससे कि राम अयोध्या लौट चलें।

कहूं वह क्या कि भैया मान जावें,
अवध उजड़ा हुआ फिर से बसावें।। पृ० १२०

वे अपने हृदय की बात कहकर भी राम की इच्छा में ही अपनी अभिलाषा को विलीन कर देना चाहते हैं—

मुझ अनुचर की अभिलाषा क्या, प्रभु इच्छा अभिलाषा मेरी।
प्रभु को जो संकोच दिलावे, कभी न हो वह भाषा मेरी।। पृ० १७६

अन्त में राम की विवशता को समझते हुए भरत उनसे उनकी चरण पादुकाएँ ही माँग लेते हैं और उन्हीं को अवधि का आधार स्वीकार करते हैं—

चरण-पीठ करुणानिधान के, रहें सदा आंखों के आगे,
मैं समझूँगा प्रभु-पद पंकज ही हैं सिंहासन पर जागे। पृ० १७८

भरत की सद् भावनाओं को देखकर राम उनकी प्रशंसा करते हैं—

बोले राम "धर्म संकट में आज भरत ने जगत उबारा,
सबके दुख अपने में लेकर सबको सुख का दिया सहारा।" पृ० १७९

चौदह वर्ष तक राम की धरोहर को सहेजते हुए अवधि के पूर्ण होने पर भरत ने उनकी थाती उन्हें सौंप दी और इसे समर्पित करते हुए भरत को जो परम शांति उपलब्ध हुई उसके सम्मुख स्वयं शांति भी संकुचित हो उठी—

प्रभु चरणों में अर्पित कर दी ब्याज सहित सारी थाती,
आज भरत की परा शान्ति में शान्ति स्वयं सिमटी जाती। पृ० २०४

इस प्रकार 'साकेत संत' के भरत हमारे सम्मुख एक आदर्श भाई, विनम्र भक्त, प्रेमी पति, सफल गृहस्थ, कुशल प्रशासक तथा प्रजा पालक राजा के रूप में आते हैं। महाकाव्य की साज-सज्जा से युक्त इस काव्य के माध्यम से भरत का उज्ज्वल चरित्र उभार कर हमारे सम्मुख आया है।
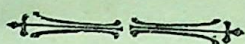
श्री भरत जी की विलक्षण महिमा

भक्त रामशरण दास
पिलखुवा

इस दिव्यातिदिव्य देश धर्मप्राण भारत की बड़ी ही अद्भुत विलक्षण महिमा है। जिसे कोई क्या कह सकता है, क्या कोई लिख सकता है, कोई क्या वर्णन कर सकता है? साक्षात् श्री शारदा, भगवान श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री महेश, गणेश, दिनेश, सुरेश, आदि भी भरत की अद्भुत विलक्षण महिमा को कहने में असमर्थ हैं। तो फिर भला मुझ पामर की किसमें गिनती है? यह समस्त विश्व में समस्त लोक-लोकान्तरों में अपनी शानी का एक ही दिव्यातिदिव्य देश है। इसी भारत में साक्षात् ब्रह्मद्रव श्री गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा, त्रिवेणी जैसी पाप-ताप हारिणी मातायें विराजमान हैं। यह भगवान की अपनी प्राण प्रिय अवतार स्थली है। और भारत का प्रत्येक कण-कण परम पवित्र है। जी चाहता है, कि भारत की परम पवित्र धूलि में खूब लोट-पोट हो जाऊं। मेरे इस अद्भुत भारत में जन्म लेकर जो विदेशों की खाक छानते डोलते हैं वे कर्महीन हैं, भारत की अद्भुत दिव्य महिमा को समझे ही नहीं हैं!

भारत में अद्भुत घटना क्या हुई?

इसी मेरे धर्मप्राण भारत में आज से लगभग ९॥ लाख वर्ष पूर्व एक बड़ी आश्चर्यजनक अलौकिक अघटित घटना घटी कि जो अनन्त कोटि

ब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म जगदाधार लाखों वर्षों की घोर तपस्या करने वाले और योग समाधि लगाने वाले बड़े-बड़े ज्ञानीन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र आदि के भी ध्यान में नही आते, और जिन्हें साक्षात् भगवान वेद भी नेति नेति कहते हैं। वही ब्रह्म परमात्मा इस भारत के एक सनातम धर्मी चक्रवर्ती सम्राट महाराजाधिराज श्री दशरथ जी के मणि जड़ित दिव्य महलों में पराम्बा भगवती कौशल्या, सुमित्रा, केकेयी की परम कोख से श्री राम, लक्ष्मण शत्रुघ्न चारों भाइयों के रूप में प्रकट हुए। यह अद्भुत दृश्य देखने के लिए और ब्रह्मसाक्षात्कार करने के लिए ३३ करोड़ देवी देवता अपने अपने दिव्य लोकों को छोड़-छोड़ कर भारत की अयोध्या नगरी में उतर आये थे। आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा और सभी महाराज श्री दशरथ जी के महलों में चक्कर लगाने लगे। अब योगी समाधि लगाकर करें तो क्या करें। वह परात्पर ब्रह्म तो महाराज श्री दशरथ जी के आँगन में श्री राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में किलकारी मार-मार कर हँस रहे हैं। मेरे भारत के एक धार्मिक सनातन धर्मी क्षत्री नरेश को समस्त विश्व के सामने यह डंके के ही चोट में घोषणा कर कहने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥

समस्त विश्व हैरान था और आज भी हैरान है कि यह बात हुई तो क्या हुई? जगज्जननी पराम्बा भगवती श्री सती जी को भी यह बात कुछ समझ में नहीं आयी भला–

जो नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि विरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

आशुतोष भगवान श्री शंकर जी महराज ने श्री सती जी को समझाया—

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहि तहँ पुनि विग्यान विहाना॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जगजाना। परमानंद परेस पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परवार नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ॥

भला जब जगदम्बा श्री सती जी भी इस प्रकार चक्कर में आ सकती हैं तो फिर भला यह घोर नास्तिक रूस, चीन के कम्यूनिस्ट। यह

गोभक्षक मुसलमान, ईसाई, नास्तिक आदि आदि अवतार बाद को नहीं मानते और उनके तुच्छ कोटोजम के दिमाक में यह नहीं समाती तो इन वेचारों का इसमें क्या अपराध है ?

'निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोय ।

सगुण ब्रह्म का जानना बड़ा कठिन कार्य है । वास्तव में ही यह बहुत ऊँची बात है और इसके विपरीत यह लोग बहुत नीची स्थिति में हैं । इनके भाग्य में यह अद्भुत आनन्द लिखा ही नहीं है ।

भगवान श्री भरत जी महाराज की अद्भुत विलक्षण महिमा

जिस प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड नायक वेद प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा का भगवान श्री राम के रूप में अवतार हुआ था तो ठीक इसी प्रकार भगवान श्री भरत जी भी कोई साधारण राजा के लड़के नहीं थे, मनुष्य नहीं थे । वे भी परब्रह्म परमात्मा भगवान श्री राम के ही साक्षात् स्वरूप परात्पर ब्रह्म ही थे । श्री राम, लक्षमण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाई साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही थे । एक ब्रह्म ही चारों भाइयों के रूप में इस अवनी तल पर अवतरित हुए थे, प्रगट हुए थे । यह कोई मनमानी कल्पित बात नहीं है, अपितु इसे प्रातःस्मरणीय महर्षि श्री वशिष्ठ जी महाराज ने श्री दशरथ जी के सामने डके की चोट पर कहा है :—

बिस्व भरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होइ ।।

जो संसार का भरण पोषण करते हैं उन आपके दूसरे पुत्र का नाम भरत होगा ।

और सुनिये महर्षि वष्शिठ जी महाराज के श्री मुख से—

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी । वेद तत्व नृप तव सुत चारी ।।
मुनिधन जन सरबस सिव प्राना । बाल केलि रस तेहिं सुख माना ।।

गुरु जी ने हृदय में विचार कर ये नाम रखे और कहा–हे राजन् तुम्हारे चार पुत्र वेद के तत्व (साक्षात् परात्पर भगवान) हैं जो मुनियों के धन और भक्तों के सर्वस्व हैं और श्री शिव जी महाराज के प्राण हैं । उन्होंने इस समय तुम लोगों के प्रेम वश बाल-लीला के रस में सुख माना है—

बारे हि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ।।
भरत शत्रुहन दूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई ।।

बचपन से ही श्रीरामचन्द्र जी को अपना परम हितैषी स्वामी जानकर श्रीलक्ष्मण ने उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली और इधर भरत, शत्रुघ्न दोनों भाइयों में स्वामी और सेवक की जिस प्रीति की प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गयी।

इससे सिद्ध हो गया कि भरत भगवान श्रीरामचन्द्र और शेषावतार श्री लक्ष्मण की भांति ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा और वेदतत्त्व ही हैं।
और भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ।।

सारा जगत भगवान श्रीराम को जपता है। और श्रीराम, श्रीभरत को जपते हैं।
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई ।।

इसलिये सबको श्री भरत महाराज के चरणों में प्रीति करनी चाहिए।

श्री भरत जी की श्रीराम भक्ति की पराकाष्ठा

श्रीभरत महाराज स्वयं साक्षात् ब्रह्म होते हुए भी श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त थे। श्रीभरत महाराज की श्रीराम भक्ति पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। जिस समय उन्हें मालूम हुआ कि माता कैकेयी ने मेरे निमित्त भगवान श्रीराम को बनवास दिलाया और मेरे लिए श्री अयोध्या का राज्य लिया है। तो अपने लिये लिये गये राज्य पर तो ठोकर मार दी और परम इष्टदेव भगवान श्रीराम को वनों के भेजने वाली माता कैकेयी का श्री भरत महाराज ने उसी क्षण से सदा सर्वदा के लिये परित्याग कर दिया। और श्रीभरत जी महाराज ने फिर कभी मन से उन्हें माता न माना और न कभी अपनी ज़बान से माता कहकर के सम्बोधन किया। जो माता होकर श्रीराम द्रोही है और हमारी श्रीराम भक्ति में बाधक है वह भला माता कैसी? कलिपावनावतार पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने लिखा है–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।।

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मुझे श्री राम से विमुख कराने वाली न तो ऐसी माता चाहिए और न चाहिये ऐसा साम्राज्य। इसे कहते हैं सच्ची वास्तविक भक्ति।

श्री भरत महाराज कैसे अद्भुत विलक्षण श्रीराम भक्त थे इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण एक दिन की घटना के आधार पर सुनिये।

सर्वान्तर्यामी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राघवेन्द्र प्रभु को जब यह मालूम हुआ कि श्री भरत जी मेरी परम अनन्य भक्ति के कारण अपनी पूज्य माता को माता नहीं मानते और न माता कहकर पुकारते हैं इससे कैकेयी जी का मन भी बड़ा खिन्न रहता है तो श्रीराम को भी मन में दुःख हुआ और उन्हें श्री भरत जी की यह बात कुछ ठीक सी नहीं लगी। श्रीराम ने एक दिन श्रीभरत जी को अपने समीप बुलाया और कहा—

राम ने कहा कि आज मांगता हूँ भिक्षा एक,
रोकर भरत बोले यह भी सहूँगा मैं।
मेरे सर्वस्व प्राण जीवन के धननाथ,
दास आपही का सदा आपका रहूँगा मैं॥
किन्तु एक आज्ञा दीजियेगा कभी नहीं मुझे,
बार-बार पद कंज प्रभु के गहूँगा मैं।
जिसने हमारे नाथ तुम्हें बनवास दिया,
उस कैकेयी को कभी मां नहीं कहूंगा मैं॥

श्री भरत जी ने श्री कैकेयी मां को मां नहीं कहा।
सो सब धर्म कर्म जरि जाऊ। जेहि न राम पद पंकज भाऊ॥

भगवान श्री राम जी चुप हो गये। ऐसी थी श्री राम के प्रति अनन्य निष्ठा। आज के पाखण्डी भक्त और साधु-संत मण्डलेश्वर तो जो भगवान श्री रामकृष्ण को काल्पनिक बता रहे हैं। उन नास्तिक नेताओं को अपने स्थानों पर बुला-बुला कर मान पत्र भेंट कर रहे हैं और उन्हें अपना परम इष्ट देव मान रहे हैं। केवल नेताओं की प्रस्तर मूर्तियां स्थापित करके उन्हें भगवान श्री राम-कृष्ण से भी बढ़ कर मान रहे हैं। यह कैसा पाखण्ड है? यह कैसी मानस भक्ति है! अभी पिछले दिनों देहली में कितने ही पाखण्डी विद्वान शास्त्री लोगों ने महामहिम राष्ट्रपति जाकिर हुसेन की प्रशंसा में उनको मान पत्र भेंट किया। राष्ट्रपति के सम्मान में मान पत्र देना, मासिक संस्कृत पत्र के विशेषांक में चित्र देना अनुचित न था, परन्तु अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार में मिथ्या प्रशंसा करना हास्यास्पद था, चित्र के नीचे जो श्लोक था, वह ज्यों का त्यों उद्धृत है—

रामादपि प्रियतरा जनतानुरक्तिः
सिंहादपि प्रबलमप्रतिमेयमोजः।
गाङ्गेयगेयनयतोऽपि नयोऽतिगेयो,
यस्यास्ति राष्ट्रपतिरेष चिरायु जीव्यात्॥

क्या श्री भरत जी के परम पवित्र जीवन से आज के ये लीडरोपासक कुछ शिक्षा लेंगे !

श्री भरत जी द्वारा १४ वर्ष तक खड़ाऊँ का विलक्षण राज्य स्थापन

कैसा था मेरे भरत का वह अद्भुत दिव्यातिदिव्य स्वर्णिम समय कि जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने अपने पूज्य माता-पिता की आज्ञा के कारण साम्राज्य पर लात मारकर बनों का रास्ता लिया था। इधर श्री भरत जी ने भ्राता श्रीराम की अनन्य भक्ति के कारण हाथ में आये साम्राज्य को पैरों से ठुकरा दिया था। यह भी श्रीभरत जी का अद्भुत भ्रातृ प्रेम और त्याग की पराकष्ठा। श्रीराम की चरण पादुका सिंहासन पर विराजमान कर दी और इधर आप गढ़ा खोद कर तपस्या में तल्लीन हो गये। १४ वर्षों तक मेरे भारत में खड़ाऊं ने राज्य किया पर क्या मजाल कि जो एक बार भी कहीं पर चोरी हुई हो। कहीं लूटमार हुई हो। कहीं पर डाके पड़े हों, कहीं पर प्रजा सताई गई हो। कहीं पर प्रजा को विपत्ति का सामना करना पड़ा हो। कहीं पर अराजकता फैली हो, खड़ाऊँ के राज्य में प्रजा ने खुब सुख-शान्ति का अनुभव किया।

प्रयाग में त्रिवेणी स्नान करते हुए श्रीराम भक्ति की भिक्षा मांगते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरवान।
जनम-जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन॥

सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

फलस्वरूप

भरत वचन सुनि मांझ त्रिवेनी। भइ मृदुबानि सुमंगल देनी॥
तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥

तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल॥

साक्षात् त्रिवेणी महारानी ने उन्हें प्रसन्न होकर वरदान दिया। आज के ये पामर प्राणी पतित पावानी श्री गंगा जी को, श्री त्रिवेणी जी को देखकर प्रणाम करना तो दूर रहा ये दुरात्मा नाक भौं चढ़ाते हैं और इन्हें नदी

और पानी बताते हैं। इनमें स्नान न कर पापी नलों के गन्दे पानी में नहाने में ही अपनी शान समझते हैं। ब्राह्मणों को दान तो दूर रहा इन्हें ठग बताते हैं। यह पूज्य भूदेव ब्राह्मणों को दान नहीं देंगे पर हां ५५ करोड़ रुपया पाकिस्तान के दरिन्दों को देने के लिए तुल जाते हैं।

श्रीभरत जी मेरे भारत देश के प्राण हैं। वे हमारे सनातन धर्म के महान रक्षक हैं। हिन्दूसभ्यता, संस्कृति के दिव्यातिदिव्य मूर्ति हैं। समस्त जीवन भर श्री भरत जी के गुणगान करने को सुनने को मिलते रहें यही हमारी उनके श्री चरणों में विनम्र प्रार्थना है।

बोलो सनातन धर्म की जय !

चन्द्र कृत 'कैकेयी' के भरत

श्री माया प्रसाद यादव एम० ए०
शान्ति भवन, रायबरेली

भरत राम के अनुज, कैकेयी उद्भव अयोध्या नरेश दशरथ के औरस पुत्र हैं। यह बात सर्व विदित और सार्वभौम है। उदार चेता भरत के विषय में कुछ कहना,—और इस वैज्ञानिक युग में, बड़ा कठिन लगता है, क्योंकि देशी-विदेशी वाङ्मय में राम कथा का जो रूप मिलता है, अनेक प्रकार का बहुरंगी और अतिरंजी भी है। इस पर सभी सुधीजन एकमत भी नहीं हैं। अस्तु, इस विविधता के पर्यावरण में भरत-चरित्र भी संश्लिष्ट और जटिल हो गया है। तत्वतः यह दो टूक और बेलाग सत्य है।

श्री चांदमल अग्रवाल 'चन्द्र' कृत 'कैकेयी' काव्य के ही नहीं, भरत राम-कथा के मूल पात्र हैं। उनकी पात्रगत विशेषता सर्वोपरि है। इनका जीवन निस्संग उपराममय हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका आदर्श स्पृहणीय है। सारतः वे अतिशय उदारमना, सदय-विनम्र, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वदर्शी और गुण समुच्चय की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी सुशील निर्मल प्रकृति से सभी अभिभूत और उत्फुल्ल प्रतीत होते हैं। ये समस्त मानवी गुण भरत चरित्र के आकर्षक केन्द्र हैं। भरत का व्यक्तित्व कुछ ऐसे स्नायु से बना है जो सब पर दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ जाता है। तभी तो भरत की अनुपस्थिति में भी गुरु वशिष्ठ राम-राज्याभिषेक-मंत्रणा के समय पूर्वाग्रही दशरथ से निःसंकोच कह उठते हैं—

भरत तो नीतिज्ञ है, धर्मज्ञ है,
गुण समुच्चय तज्ञ है, तत्वज्ञ है,
चाहिए उठती न भय की कल्पना ।। पृ० सं० ३२ कैकेयी

★ ★ ★

भरत निश्चित सत्य-व्रत सेवा-निरत ।।पृ० सं० ३३ कैकेयी

इसी प्रकार दशरथ की अभिव्यक्ति जो भरत के विषय में की गई है, वह मूल्यवान तो है, परन्तु विपक्षी राम ने स्वयं भरत के विषय में क्या कहा

सोचा है, समझा है और अनुभव किया है, वह कहीं उससे अधिक सारवान, प्रभिष्णु और प्रामाणिक है। इसलिए तत्वतः राम ने भरत के मर्म को समय समय पर अवगाहा है। उनका अभाव राम के लिए असह्य है। अवसर पाकर वे अकारण और अहैतुक लक्ष्मण से कह उठते हैं—

कर रही प्रिय भरत की, अस्थिर मुझे याद।
क्यों न हो अभिषेक उनके लौटने के बाद ?

भरत-शत्रुघ्न अयोध्या आ गए, परिस्थिति से अवगत हुए, उन्हें पश्चाताप और ग्लानि है। राम को बन से लौटाने के लिए सकल समाज के साथ वे चित्रकूट जा रहे हैं। सीधे लक्ष्मण आपद् भरी आशंका ग्रस्त हो राम से कहते हैं—

न दुष्ट के बच पावें प्राण,
मूल्य कुटिलता का ले जान।
धारण करो कवच शिर-त्राण,
आर्य ! उठो, लो, शर संधान ।। पृ० सं० १५७ 'कैकेयी'

रामवस्तु स्थिति को नहीं समझ पाये, लक्ष्मण से पूछते हैं किसके लिए ऐसा प्रयास कर रहे हो ? लक्ष्मण ने स्पष्ट किया—

और कौन ? खल वही अरिष्ट,
कुटिल केकई - जातक नीच।
ठीक, यही मुझको इष्ट—
उसे मृत्यु ही लाई खींच ।। पृ० सं० १५७

लक्ष्मण की आमर्ष-आक्रोश पूर्ण बातों को सुनकर राम ने सहज भाव से अपने अन्तर की बात कह दी। यह व्यामोह या भय की स्थिति नहीं अपितु राम के ऊपर भरत के समष्टि गत व्यक्तित्व की छाप है जिसकी प्रतिकृति निज-स्वरूपा भव्य मुद्रा राम की इस अभिव्यक्ति या प्रत्युत्तर में अवलोकन करें—

बन्धु भरत पर शंका व्यर्थ,
बनो क्रोध-वश यों न अधीर ।। पृ० सं० १५८ 'कैकेयी'

★ ★ ★

भ्रातृ-भक्त वह धर्म-धुरीण-
सत्यनिष्ठ, विनयी, गुणखान।
स्नेह-सिंधु ही, कपट-विहीन,
सत्य भरत ही भरत समान ।। पृ० सं० १५८ 'कैकेयी'

क्या शेष है ? सब कुछ तो राम ने कह दिया। ऐसा ही भरत का चरित्र 'कैकेई' काव्य में अनुस्यूत है। स्पष्टतः 'कैकेयी' काव्य का भरत मानस के भरत की दीप्ति से दीपित है।

भरत ने राम को ही नहीं, राम जननी कौशिल्या को भी अपने आचरणों से परितुष्ट किया है। तभी तो कैकेयी पश्चाताप और ग्लानि से परिशुद्ध हो सच्चे चित्त से विसूरती है—

प्यारा जैसा भरत, मुझको, तैसा उन्हें भी रहा। पृ० स० १६७

अन्ततः भरत के आचार, ज्ञान, नीति-पटुता और चित्त वैराग्य का स्फुट ब्योरा प्रस्तुत करना असंगत नहीं। भरत ननिहाल से अयोध्या आ रहे हैं,। वीरान पथ-वीथी, गवाक्ष, मलीन नगर-शोभा को देखकर शत्रुघ्न से कह उठते हैं—

दिखाते क्यों न कोई जन विचरते ?
न बालक खेलते-लड़ते-झगड़ते ।।
डगर कोई न नव बाला मचलती,
नगर में छा रही यह शान्ति खलती ।। पृ० सं० १४३ कैकेयी

इससे पता चलता है कि भरत को शोक पर्यावरण का पूर्ण परिज्ञान है। अस्तु परिस्थिति को देखकर वे सही परिणाम पर पहुंच जाते हैं। यह इन्द्रिय जागरूकता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

उन्हें इसका भी बड़ा दुःख, परिताप और क्लेश है कि वे रुग्ण पिता की कुछ भी सेवा नहीं कर सके। यह परिताप-भाव साधु भरत का देखें। यहाँ भी उनमें संतुलन है, संयम है और है समग्र जाग्रत विवेक—

न सेवा कर सके कुछ हम पिता की,
समेटें राख ही हा ! क्या चिता की ?
हुआ सो तो हुआ, धीरज धरो अब,
उचित जो कार्य, सम्मुख वह करो अब ।। पृ० सं० १४५

कर्तव्य निष्णात भरत राम-माता कौशिल्या के पास बिलखते दौड़ते और रोदन करते हुए जाकर पैरों पर गिर पड़ते हैं। यह दशा जितनी सहज है उतनी ही स्वाभाविक भी। कृत्रिम-भाव का कहीं लवलेश नहीं। यही तो सबको भरण करने वाली भरत की सच्ची प्रकृति है।

भरत कितने आतुर, उतावले और व्यग्र हैं, राम को अयोध्या ले आने में देखिए क्षण भर का विलम्ब नहीं। उन्हें राम पर पूरा भरोसा है। आनन-

कानन वे सबको साथ लेकर प्रस्थान करते हैं। चित्रकूट पहुंचते ही कैसे राम-चरण स्पर्श के लिए भागते हैं नितान्त विदेह होकर—

धाए रोदित अग्रज-ओर,
रहा न उनको तन का भान।
बढ़े राम भी प्रेम-विभोर,
तरकस कहीं, कहीं धनु-वाण ।। पृ० सं० १५६

भरत के साथ गुरुजन, माताएँ, परिजन-पुरजन सब तो आए हैं राम को मनाने। लौटने के लिए सभा-बीच भरत प्रस्ताव ही नहीं रखते, राम से खुला आग्रह करते हैं—

लौटो मेरे फिर आराध्य।
दोष भूल कर विनती मान।
उचित न हठ यों, करो न बाध्य।
तुमको स्यात न इसका भान ।। पृ० सं० १६१

अन्ततः राम नहीं लौटते, भरत पादुका लेकर लौट आते हैं। चौदह वर्ष तक बड़े धैर्य और दृढ़ नीति से राजतंत्र चलाते हैं, सजग नन्दिग्राम में तपस्वी बनकर। यह तपस्वी जीवन ही भरत का सर्वस्व है, उत्तुंग है और है ऐसी बेखुदी की बुलंदी, जिसका कोई स्पर्श तक न कर सका। भरत की यह महिमा सारतः अव्याकृत, पूर्ण अव्याकृत—किसमें हैं सामर्थ्य इसकी व्याख्या करने की।

सम्यक् राज्य के संस्थापक भरत किस निष्कपट भाव से राम की धरोहर समझ कर अयोध्या को संजोए रहे। प्रहरी की तरह अहर्निशि जागते रहे। भरत सतत प्रयत्नशील। राम के आने पर क्या हुआ कवि के शब्दों में सुनें, देखें और अनुभव करें—

सफल मनोरथ! मन आतुर, दूं—
तुमको सौंप धरोहर।
राम! संभालो, लो अब अपना—
राज्य भरत यह अनुचर ।। पृ० सं० १९३

भरत का चरित्र बड़ा उदात्त है, महनीय है और है परम पुनीत। 'कैकेयी' काव्य के भरत पर बाल्मीकि का प्रभाव कम और तुलसी का अधिक दृष्टिगत होता है। फिर भी कृति का महत्व सर्वतः स्पृहणीय है।

भरत-

('ब्रह्मलोक' मासिक पत्र का विशेषांक)

सम्पादक
चन्द्रमणि
शर्मेन्द्र

प्रकाशक
ब्रह्मलोक कार्यालय

डॉ० राम स्वरूप आर्य

को

सादर